❁ सतरहवां अध्याय ❁

।। सारांश।।

{विशेष :- गीता अध्याय 17 में प्रवेश से पहले यह व्याख्या ध्यानपूर्वक पढ़ें व समझें। गीता अध्याय 16 के श्लोक 1 से 5 में अच्छे स्वभाव वाले दैवी प्रकृति वाले व्यक्तियों का वर्णन है, परंतु वे भी शास्त्रविरूद्ध साधना करते हैं। श्लोक 6-9, 14-20 में कहा है कि जो कहते हैं कि संसार का कोई ईश्वर या परमेश्वर कर्ता नहीं है। यह तो नर-मादा के संयोग से उत्पन्न होता है। काम (Sex) इसका कारण है। वे शास्त्रविधि त्यागकर मनमाना आचरण करके अपना जीवन नष्ट करते हैं तथा मानव शरीर में बने कमल चक्रों में विराजमान मुख्य देवताओं, मुझे तथा परमेश्वर को क्रश करने वाले हैं। उन कुकर्मियों को बार-बार असुर योनि में डालता हूँ। फिर इस अध्याय 16 के श्लोक 23-24 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि :-

अध्याय 16 श्लोक 23 का अनुवाद :- जो साधक शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है यानि शास्त्र वर्णित साधना मंत्रों के अतिरिक्त अन्य नाम जाप करता है। अन्य साधना शास्त्रविरूद्ध करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है यानि सत्य साधना से होने वाली भक्ति की शक्ति जिसके बल से साधक सनातन परम धाम जाता है, वह सिद्धि उसे प्राप्त नहीं होती, न उसे कोई सुख प्राप्त होता है, न उसकी गति यानि मुक्ति होती है अर्थात् शास्त्र के विपरित भक्ति करना व्यर्थ है क्योंकि इन तीनों लाभों को प्राप्त करने के लिए साधक परमात्मा की भक्ति करता है।

गीता अध्याय 16 श्लोक 24 का अनुवाद :- इससे तेरे लिए कर्तव्य यानि जो साधना कर्म करने योग्य हैं और अकर्तव्य अर्थात् जो न करने वाला भक्ति कर्म है, उसके निर्णय के लिए शास्त्र ही प्रमाण मानना है। इस अध्याय 17 में उन्हीं के विषय में अर्जुन ने प्रश्न किया है कि ये जो शास्त्रविधि त्यागकर साधना करते हैं। उनकी साधना है तो व्यर्थ, परंतु उनकी श्रद्धा कितने प्रकार की व कैसी होती है?}

गीता अध्याय 17 के श्लोक 1 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि शास्त्रविधि को त्यागकर यानि शास्त्र के विपरित मनमाना आचरण करके श्रद्धा से युक्त हुए साधना (पूजन) करने वाले व्यक्ति किस निष्ठा (वत्ति) के होते है? सात्विक या राजसी वा तामसी अर्थात् तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) तथा इनसे भी नीचे के देवी-देवताओं के साधकों के स्वभाव तथा चरित्र कैसे होते हैं?

।। सर्व प्राणी शास्त्र विधि रहित भक्ति भी स्वभाव अनुसार ही करते हैं।।

गीता ज्ञान दाता का उत्तर :-

(गीता अध्याय 17 श्लोक 2 से 10 तक का सारांश)

गीता ज्ञान दाता ने उत्तर दिया है कि शास्त्रविधि को त्यागकर साधना करने वाले वाले स्वभाव वश साधना करते हैं। जिसका अंतःकरण जैसा है, उसे वैसी पूजाओं में श्रद्धा होती है।

❖ *सात्विक वत्ति के व्यक्ति अन्य देवी-देवताओं तथा श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी को पूजते हैं तथा विशेष कर इष्ट रूप में विष्णु जी की पूजा करते हैं जो शास्त्रविरूद्ध है।*

❖ *राजस वत्ति के व्यक्ति यक्षों व राक्षसों की व तीनों उपरोक्त प्रभुओं को भी पूजते हैं, परन्तु इष्ट रूप में ब्रह्मा जी की उपासना रजोगुण प्रधान व्यक्ति करते हैं जो शास्त्रविरूद्ध है।*

❖ *तामस वत्ति के भूतों, पित्रों तथा तीनों ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी की भी पूजा करते हैं तथा तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव होता है। जैसे रावण ने भगवान शिव की साधना इष्ट मान कर की जिस से नरक का भागी हुआ और उससे निम्न स्तर की साधना भूतों-पितरों की पूजा करके सीधे नरक चले जाते हैं। जो शास्त्र विधि के विरूद्ध साधना करते हैं वे दुष्ट आत्मा मुझे तथा उस परमात्मा को भी कष्ट देते हैं तथा वे राक्षस वत्ति के जान। उनको भोजन भी वत्ति (स्वभाव) वश ही पसंद होता है। सात्विक मनुष्यों को साधारण भोजन दाल, दूध, दही-घी, मक्खन, शहद, मीठे फल आदि पसंद तथा राजसी मनुष्य कड़वे (शराब, पान, हुक्का) खट्टे, ज्यादा नमक वाले, ज्यादा गर्म-रूखे, मुख जलाने वाले (मिर्च) आदि जो रोगों का कारण होते हैं पसंद होता है।*

तामसी व्यक्ति गला-सड़ा, रस रहित अपवित्र (मांस-शराब-तम्बाखु आदि) बासी, झूठा आहार पसंद करते हैं।

।। शास्त्र विधि को त्याग कर साधना करने वाले भगवानों के लिए दुःखदाई तथा नरक के अधिकारी।।

अध्याय 17 के श्लोक 6 का अनुवाद :-- शरीर में स्थित मुझे तथा प्राणियों के मुखिया (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रकति-आदि माया व गणेश) तथा शरीर में हृदय में स्थित कपड़े में धागे की तरह व्यवस्थित करके रहने वाले पूर्ण परमात्मा को परेशान (कश) करने वाले अज्ञानियों को राक्षसी स्वभाव वाले ही जान जो मतानुसार (शास्त्र विधि अनुसार) साधना नहीं करते और मनमुखी साधना तथा आचरण करते हैं।

विशेष : मानव शरीर (स्थूल शरीर) में कुल कमल चक्र नौ हैं, परंतु सात कमल हैं जो सामान्य ऋषि की पहुँच में हैं। यहाँ पर सात कमल चक्रों का वर्णन किया जाता है।

प्रत्येक चक्र में भिन्न-भिन्न देवताओं का प्रभाव है। जैसे टैलिविजन चैनल (T.V. Channel) से प्रसारण तो एक स्थान यानि प्रसारण केन्द्र से होता है, वही करोड़ों टैलिविजनों में देखा जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक देवता अन्य स्थानों पर रहते हुए भी मानव शरीर में बने कमल चक्रों में दिखाई देते हैं।

❖ *रीढ़ की हड्डी गुदा के पास समाप्त होती है। उससे दो ऊँगल ऊपर -*

1. मूल कमल - इसमें गणेश जी रहते हैं। इस कमल की चार पंखुड़ियाँ हैं। फिर मूल कमल से लगभग दो ऊँगल ऊपर रीड की हड्डी के साथ अन्दर की तरफ

2. स्वाद कमल (चक्र) है जिसमें ब्रह्मा सावित्री रहते हैं। इस कमल की छः पंखुड़ियाँ हैं।

3. स्वाद चक्र से ऊपर नाभि के सामने रीड की हड्डी के साथ नाभि कमल है उसमें भगवान विष्णु व लक्ष्मी रहते हैं। इनकी आठ पंखुड़ियाँ हैं।

4. इससे ऊपर हृदय के पीछे एक हृदय कमल है उसमें भगवान शिव व पार्वती रहते हैं। इस हृदय कमल की 12 पंखुड़ियाँ हैं।

5. इनसे ऊपर कण्ठ कमल है जो कण्ठ के पास पीछे रीढ की हड्डी से ही चिपका हुआ है। इसमें प्रकति देवी (अष्टंगी माई) रहती है। इस कमल की सोलह पंखुड़ियाँ हैं।

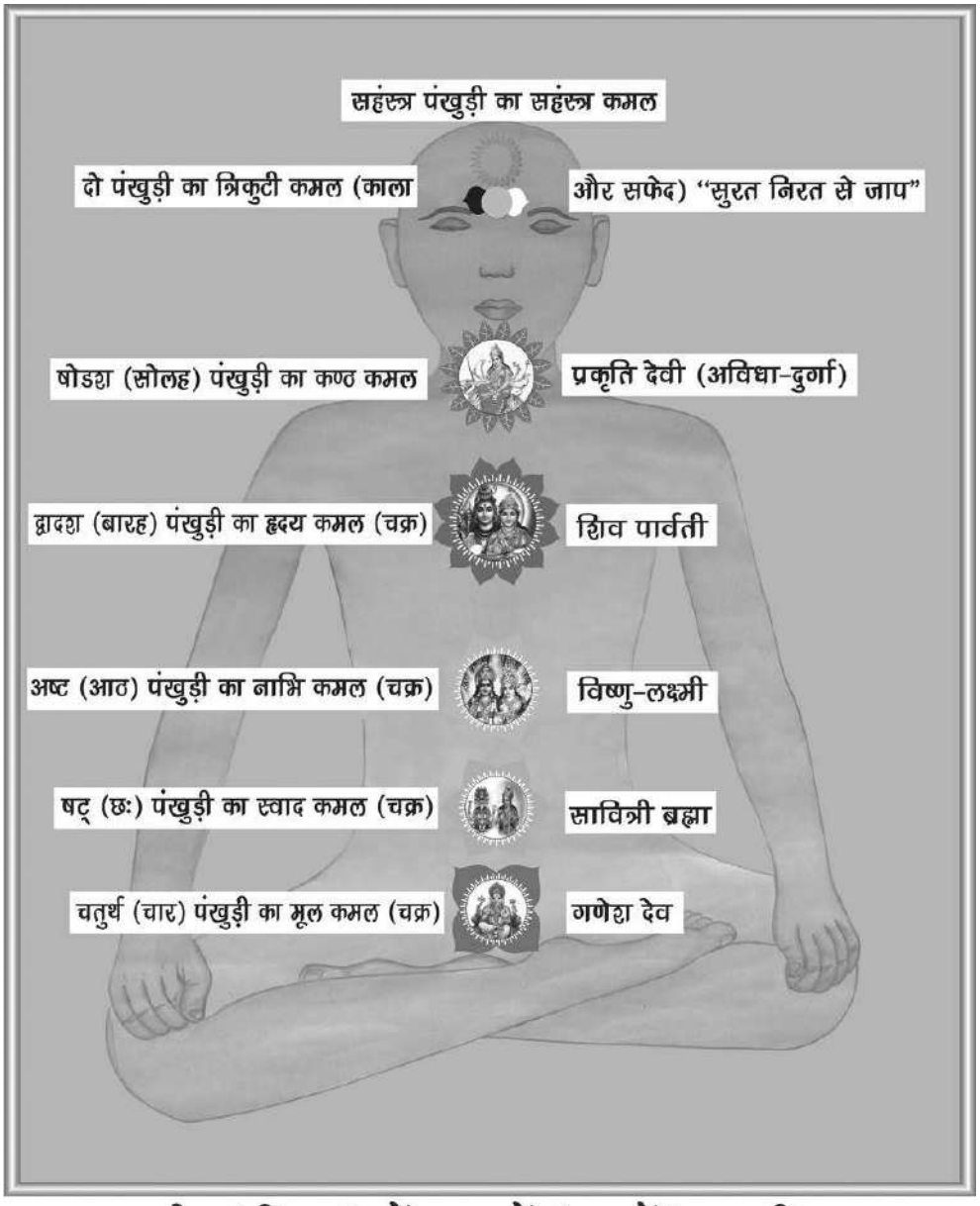

शरीर (पिण्ड) में कमलों (चक्रों) का चित्र

6. इससे ऊपर त्रिकुटी कमल है। इसकी दो पंखुड़ियाँ हैं। (एक सफेद दूसरी काली रंग की।) इसमें पूर्ण परमात्मा रहता है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी प्रत्येक मानव के शरीर पर प्रभाव डालता रहता है, परन्तु दिखाई आँखों से ही देता है, यहाँ पर ऐसा भाव जानना है तथा इसके साथ-साथ आत्मा के साथ अन्तःकरण में भी रहता है। जैसे धागा पूरे कपड़े में समाया हुआ होता है तथा अन्य कशीदाकारी भी होती है जो कुछ हिस्से पर ही होती है।

7. इससे ऊपर जहाँ चोटी रखते हैं उस स्थान पर अन्दर की ओर सहंस्रार कमल है जहाँ ज्योति निंरजन (हजार पंखुड़ियों रूप में प्रकाश रूप में) स्वयं काल (ब्रह्म) रहता है। इस कमल की एक हजार पंखुड़ियाँ हैं। इसीलिए इस श्लोक में कहा है कि जो राक्षस स्वभाव के व्यक्ति शास्त्रानुकूल साधना नहीं करते वे शरीर में रहने वाले मुझे तथा प्राणी प्रमुख ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, आद्या (प्रकति) तथा पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है (जैसे गंध और वायु रहती हैं) को परेशान करते हैं, उन्हें घोर नरक में डालता हूँ।

❖ *भक्त सम्मन को अपने गुरुदेव जी के लिए अपने इकलौते पुत्र सेऊ की गर्दन काटनी पड़ी तो भी पीछे नहीं हटा। यह शास्त्रानुकूल साधक का शरीर सम्बन्धी तप हुआ। जैसे कबीर साहेब सत्य साधना का विवरण दिया करते थे। झूठी साधना (देवी-देवताओं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, माता मसानी, मूर्ति पूजा) को अधूरी तथा मोक्ष बाधक बताते थे। शराब पीना, मांस खाना, तम्बाखु प्रयोग करना महा पाप है। हिन्दु-मुस्लिम एक ही परमात्मा के जीव हैं। मस्जिद व मन्दिर में भगवान नहीं है। भगवान तो पूर्ण संत से नाम लेकर शास्त्रानुकूल साधना करने से शरीर में ही प्राप्त होता है। जैसे गाय, भैंस, भेड़, बकरी, या कोई भी स्तन धारी मादा प्राणी है। उसके शरीर में से ही दूध प्राप्त होता है। बिना बच्चे वाली मादा के शरीर में दूध नहीं होता परंतु जब वह मादा नए दूध होती है अर्थात् गर्भधारण करती है। फिर बच्चे को जन्म देती है। तब दूध प्राप्त होता है। इसी प्रकार जब यह मनुष्य शरीर धारी प्राणी पूर्ण गुरु (तत्वदर्शी संत) से नाम ले लेता है। फिर सुमरण करता है तथा आजीवन गुरु मर्यादा में रहता है तो उसमें भक्ति रूपी बच्चा तैयार होता है। फिर परमात्मा से मिलने वाला लाभ (दूध) प्राप्त होता है। अन्य कहीं पर परमात्मा प्राप्ति नहीं है। वैसे तो परमात्मा की शक्ति निराकार रूप में सर्व व्यापक है। जैसे सूर्य का प्रकाश व ताप दिन के समय सर्व स्थानों पर प्रभाव डालता है, परंतु ऊर्जा संग्रह तो सौलर यन्त्र ही करता है यानि मानव शरीर में भक्ति से परमात्मा की शक्ति संग्रह होती है जो लाभ देती है। कार्य सिद्ध करती है, मोक्ष देती है। ऐसे ही प्रभु आकार में सत्यलोक में रहते हुए भी घर, खेत, मन्दिर, मस्जिद आदि में भी है। परंतु वह जीव को कोई लाभ नहीं दे रहा है। लाभ गुरू से नाम प्राप्त व्यक्ति को ही मिलता है।*

अन्य उदाहरण :- जैसे सूर्य का प्रकाश व ताप अपने विधान के अनुसार ही लाभ प्रदान करता है। सर्दियों में पूर्ण ताप प्रदान नहीं कर पाता जिस की पूर्ति के लिए आग जलानी पड़ती है या हीटर-वातानुकूल करने वाले (Air conditioner) यन्त्र का प्रयोग अवश्य करना पड़ता है या मोटे व ऊनी वस्त्र धारण करके ताप पूर्ति की जाती है। इसी प्रकार हम सत्यलोक में उस पूर्ण परमात्मा का पूर्ण लाभ प्राप्त कर रहे थे। अब हम उस परमेश्वर से दूर आने से सर्दियों वाले शरद क्षेत्र में आ गए हैं। उसके कुछ गुण प्राप्त करने के लिए वही साधन अपनाने पड़ेंगे जो हमारी रक्षा कर सकें अर्थात् शास्त्र विधि (उपरोक्त गर्मी पैदा करने वाले वास्तविक साधनों को) त्याग कर अन्य उपाय (शास्त्र विधि रहित) करने का कोई लाभ नहीं है। (प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में)।

जब दुःखी प्राणी संत (परमात्मा प्रकट किए हुए साधक) के पास जाता है। उसके आशीर्वाद

से सुखी हो जाता है। वहाँ परमात्मा उस संत में मिला अर्थात् उस पूर्ण संत ने ताप प्रदान करने वाले साधन (शास्त्र विधि अनुसार साधना) प्रदान किए जिससे उसको ईश्वरीय गुणों का लाभ प्राप्त हुआ। क्योंकि परमात्मा के यही गुण होते हैं। किसी धर्म के अन्दर मांस, मदिरा, तम्बाखु सेवन का आदेश नहीं है अर्थात् सख्त मनाही है। जो बकरी काट कर भगवान पूजन करते हैं वे भक्ति नहीं कर रहे बल्कि नरक के अधिकारी बन रहे हैं। इन सच्ची बातों का बुरा मान कर धर्म के झूठे ठेकेदारों कथित मुल्ला, काजी व कथित पंडितों ने कबीर साहेब को बहुत तंग किया। कभी सरसों के उबलते हुए तेल में डाला। कभी खूनी हाथी के आगे डाला आदि-आदि। यह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

गीता अध्याय 17 के कुछ श्लोकों का हिन्दी अनुवाद

गीता अध्याय 17 श्लोक 1-10 :-

अध्याय 17 श्लोक 1 का अनुवाद : श्लोक 1 में अर्जुन ने जानना चाहा कि हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे युक्त हुए देवादिका पूजन करते हैं। उनकी स्थिति फिर कौन-सी सात्विकी है अथवा राजसी तामसी?(1)

❖ *गीता ज्ञान देने वाले काल ब्रह्म ने उत्तर दिया :-*

अध्याय 17 श्लोक 2 का अनुवाद : मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी ऐसे तीनों प्रकार की ही होती है। उस अज्ञान अंधकाररूप जंजाल को सुन।(2)

अध्याय 17 श्लोक 3 का अनुवाद : हे भारत! सभी की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह व्यक्ति श्रद्धामय है इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं वास्तव में वही है।(3)

अध्याय 17 श्लोक 4 का अनुवाद : सात्विक पुरुष श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी आदि देवताओं को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसोंको तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं तथा मुख्य रूप से श्री शिव जी को भी इष्ट मानते हैं।(4)

अध्याय 17 श्लोक 5 का केवल हिन्दी अनुवाद : जो मनुष्य शास्त्रविधिसे रहित केवल मन माना घोर तपको तपते हैं तथा पाखण्ड और अहंकारसे युक्त एवं कामना के आसक्ति और भक्ति बल के अभिमान से भी युक्त हैं।(5)

अध्याय 17 श्लोक 6 का अनुवाद : शरीर में रहने वाले प्राणियों के मुखिया - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा गणेश व प्रकृति को व मुझे तथा इसी प्रकार शरीर के हृदय कमल में जीव के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को परेशान करने वाले उनको अज्ञानियोंको राक्षसस्वभाववाले ही जान। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 तथा अध्याय 18 श्लोक 61 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा विशेष रूप से सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित है।(6)

अध्याय 17 श्लोक 7 का अनुवाद : भोजन भी सबको अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है इसलिए वैसे ही यज्ञ तप और दान भी तीन-तीन प्रकारके होते हैं उनके इस भेदको तू मुझसे सुन।(7)

अध्याय 17 श्लोक 8 का अनुवाद : आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसेही मनको प्रिय ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सतोगुण प्रधान अर्थात् विष्णु के उपासक को जिनका विष्णु उपास्य देव है। उनको ऊपर लिखे आहार करना पसंद होते हैं।(8)

अध्याय 17 श्लोक 9 का अनुवाद : कडुवे, खट्टे, लवणयुक्त बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको रजोगुण प्रधान अर्थात् जिनका ब्रह्मा उपास्य देव है उनको ऊपर लिखे आहार स्वीकार होते हैं। क्योंकि हिरणाकशिपु राक्षस ने ब्रह्मा की उपासना की थी।(9)

अध्याय 17 श्लोक 10 का अनुवाद : जो भोजन अधपका रसरहित दुर्गन्धयुक्त बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुषको प्रिय होता है। तमोगुण प्रधान व्यक्तियों का उपास्य देव शिव है तथा वे उनसे निम्न स्तर के भूत प्रेतों को पूजते हैं उनको आहार ऊपर लिखित पसंद होता है। (10)

❖ *गीता अध्याय 17 श्लोक 11-13 का सारांश :-*

''यज्ञों की जानकारी''

❖ *गीता ज्ञान दाता ने श्लोक 11 में बताया है कि यज्ञ यानि धार्मिक अनुष्ठान शास्त्र विधि अनुसार (पूर्ण गुरू के बताए अनुसार) बिना कार्य सिद्धि के मनुष्य का कर्तव्य मानकर मन को तत्वज्ञान से समझाकर किया जाता है। वह सात्विक है यानि यथार्थ यज्ञ है।(17/11)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 12 में कहा है कि जो यज्ञ दम्भ यानि पाखण्ड आचरण के लिए किया जाता है तथा फल प्राप्ति की इच्छा रखकर किया जाता है, उस यज्ञ को राजस समझ।(17/12)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 13 में तामस यज्ञ के लक्षण बताए हैं। कहा है कि शास्त्रविधि से हीन यानि जो शास्त्र में वर्णित नहीं है तथा जिसमें अन्न दान से रहित यानि जिस धार्मिक कार्यक्रम में भोजन नहीं कराया जाता (लंगर नहीं लगाया जाता) तथा जिसमें गुरू को दक्षिणा नहीं दी जाती और जो बिना श्रद्धा के किया जाता है, वह यज्ञ तामस कहा जाता है।*

गीता अध्याय 17 श्लोक 14-19 का सारांश :-

''तप की परिभाषा''

गीता अध्याय 17 के श्लोक 14 से 19 में तप की व्याख्या बताई है जो करना चाहिए। जैसे इसी अध्याय 17 के श्लोक 5-7 में घोर तप करना शास्त्रविधि रहित होने से व्यर्थ कहा है जो अकर्तव्य है। जो घोर तप करते हैं, वे असुर स्वभाव वाले बताया है। इसी अध्याय 17 श्लोक 14-19 में कर्तव्य तप के लक्षण बताए हैं :-

❖ *अध्याय 17 श्लोक 14 :- देव यानि देवता, द्विज यानि ब्राह्मण अर्थात् विद्वान गुरू तथा प्राज्ञ यानि तत्वदर्शी संत का पूजन यानि सत्कार, पवित्र रहना यानि सफाई रखना, सरलता यानि नम्रता करना, ब्रह्मचर्य रखना यानि जति धर्म का पालन करना {जति दो प्रकार के होते हैं :- 1. जो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करता है। विवाह नहीं करता। 2. जो विवाह करता है तथा अपनी स्त्री तक ही सीमित रहता है।}, अहिंसा को आधार मानता है यानि जो किसी को तन-मन, वचन से पीड़ा नहीं देता, स्वयं कष्ट उठा लेता है। जो सत्संग में आने वाले भाई-बहनों, वद्धों, रोगियों, असहायों की सेवा करता है, सत्संग में जो भी सेवा मिलती है, उसे पूरी निष्ठा से करता है। यह शरीर संबंधी तप कहा है।(17/14)*

वाणी संबंधी तप :-

अध्याय 17 श्लोक 15 :- जो साधक किसी के कटु वचन कहने पर भी नहीं भड़कता, सबसे प्यार से बोलता है। सत्य भाषण करता है यानि स्वार्थ या भय के कारण झूठ नहीं बोलता अपितु

यथार्थ न्याय की बात कहता है। उसके लिए कितना भी कष्ट सहना पड़े, प्रवाह नहीं करता है, वह वाणी संबंधी तप कहा जाता है। जैसे परमेश्वर कबीर जी ने सत्य ज्ञान कहा। स्वार्थी तत्कालीन धर्मगुरूओं ने ढ़ेर सारी यातनाऐं दी, परंतु अडिग रहे। यह वाणी रूपी तप है जो करना चाहिए। (स्वाध्याय अभ्यसनम्) प्रतिदिन सुबह, दोपहर व शाम तीनों समय की संध्या यानि आरती करना। धर्म ग्रंथों को पढ़ना, धार्मिक पुस्तकों जो ग्रन्थ-शास्त्रों को सरल करके लिखी गई हैं, उनको पढ़ना वाणी संबंधी तप कहा जाता है।(17/15)

❖ *गीता अध्याय 17 श्लोक 16 :- इसमें बताया है कि मन को शांत व प्रसन्न रखना मन को बुराईयों से हटाकर शुभ कर्मों तथा शास्त्रविधि अनुसार साधना में लगाना, बड़बड़ न बोलकर यानि मौन रहना। यहाँ पर मौन का अर्थ यह नहीं है कि किसी से बोलना ही नहीं है। इस मौन का भावार्थ है कि कोई व्यक्ति भक्त या संत को अभद्र भाषा भी बोलता है तो उत्तर न दे। अपने ज्ञान को बताने के लिए अनावश्यक बड़-बड़ न करे। कोई इच्छ से सुनना चाहे तो अवश्य समझाए। कबीर परमेश्वर जी ने सूक्ष्मवेद यानि तत्वज्ञान में कहा है कि :-*

कबीर, कहते को कहे जान दे, गुरू की सीख तू लेय।
साकट और श्वान (कुत्ते) को उल्ट जवाब न देय।।

भावार्थ :- यदि कोई व्यक्ति भक्त-संत को अनाप-शनाप बातें कहता है तो भक्त को चाहिए कि वह अपने गुरू द्वारा बताए ज्ञान को आधार बनाकर शांत रहे। गुरू जी बताते हैं कि यदि कुत्ता आपकी ओर भौंकता है तो उसे कुछ मत कहो, चले जाओ या शांत खड़े रहो। यदि कुत्ते को भौंकने से रोकने की कोशिश करोगे तो और अधिक भौंकेगा। इसी प्रकार यदि साकट यानि दुष्ट व्यक्ति को उत्तर दोगे तो और अधिक बकवास करेगा। इसलिए अपने मन को समझाकर संयम बरतना मन संबंधी तप कहा है।(17/16)

❖ *अध्याय 17 श्लोक 17 :- करने योग्य तप यानि कर्तव्य भक्ति कर्मों में तप उसे कहते हैं जो स्वधर्म पालन में आने वाली कठिनाइयाँ जो सेवा करने में, दान करने में, समाज के व्यंग्य सहने में जो-जो मानसिक या शारीरिक पीड़ा होती है, वह वास्तविक तप है। उस तप को यानि भक्ति कर्मों को करने वाले साधक पुरूषों (स्त्री-पुरूष) द्वारा श्रद्धा से किया जाता है। यह तप यानि साधना सात्विक कहा जाता है। जो पूर्व के श्लोकों में बताया है, वह ही वास्तविक तप है।(17/17)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 18 :- जो तप यानि साधना सत्कार, मान और पूजा करवाने के लिए पाखण्ड से किया जाता है, वह (अध्रुवम्) निराधार यानि अनिश्चित फल वाला (चलम्) चलायमान यानि क्षणिक यहाँ राजस तप कहा गया है जो शास्त्रविधि विरूद्ध होने के कारण व्यर्थ है।(17/18)*

घोर तप के विषय में श्लोक 19 में कहा है। इसका संबंध इसी अध्याय 17 के श्लोक 5-6 से है।

❖ *अध्याय 17 श्लोक 19 :- मूढ़ग्राहेण आत्मनः पीड़या क्रियते यत् तपः यानि जो मूर्ख आत्मा मूर्खतापूर्वक हठ से अपने शरीर को पीड़ा देकर तप करते हैं। जैसे पाँच धूने लगाकर तप करते हैं। वर्षों खड़ा या बैठकर तप करते हैं या जल में खड़े होकर तप करते हैं। जैसे भस्मासुर ने शीर्षासन करके ऊपर को पैर नीचे को सिर कर किया, वह तप तथा ''परस्य उत्सात् अनार्थम्'' यानि दूसरे का अनष्टि यानि बुरा करने के लिए किया गया तप तामस कहा जाता है। जैसे वर्तमान में एक ट्रैंड चल रहा है। यदि किसी की किसी से कहा-सुनी यानि झगड़ा हो जाता है तो वे एक-दूसरे का अनिष्ट करवाने के लिए जन्त्र-मन्त्र करने वाले तांत्रिकों व सेवड़ों के पास धन लुटाते हैं। उनसे अपने शत्रु का नाश करने की फीस देते हैं। ऐसी साधना करने वाले तांत्रिकों द्वारा किया यह तप जिससे*

अन्य को कष्ट देने के उद्देश्य से किया जाता है, वह तामस तप है, पाप देने वाला है।(17/19)

❖ *गीता अध्याय 17 श्लोक 20-22 का सारांश :-*

सात्विक दान :- गीता अध्याय 17 श्लोक 20 :- जो दान अपना भक्ति कर्तव्य कर्म जानकर बिना स्वार्थ के देश, काल तथा पात्र के प्राप्त होने पर दिया जाता है, वह दान सात्विक यानि यथार्थ दान कहा जाता है। देश, काल व पात्र से तात्पर्य है कि गुरू धारण करके उनके आदेशानुसार किया दान लाभदायक है। देश का अर्थ है स्थान, काल का अर्थ समय। गुरू जी आवश्यकता अनुसार गरीब, दुःखियों, असहायों की सहायता करने को कहें, करो अन्यथा गुरू जी को दान दे दो जो सुपात्र है। वह अपने आप आपके दान को खर्च करे। वह दान सही है।(17/20)

विशेष :- परमेश्वर कबीर जी ने संत गरीबदास जी को सूक्ष्मवेद यानि तत्वज्ञान में कहा है :-

बिन इच्छा जो दान देत है, सोई दान कहावै। फल चाहै नहीं तास का अमरापुर जावै।

भावार्थ :- जो साधक फल की इच्छा न करके दान करता है, वही वास्तविक दान है जो भक्त के मोक्ष में भी सहयोग करता है तथा यहाँ संसारिक सुख भी प्रदान करता है।

❖ *अध्याय 17 श्लोक 21 :- जो दान क्लेशपूर्वक यानि जैसे चंदा माँगने वाले को धन दुःखी मन से मजबूरी में दिया जाता है, वह दान व्यर्थ है और जो दान के बदले में परमात्मा से कुछ लाभ फल प्राप्ति के लिए दिया जाता है, वह दान राजस है यानि उसका मोक्ष में सहयोग नहीं है।(17/21)*

❖ *अध्याय 17 श्लोक 22 :- जो दान कुपात्र को दिया जाता है तथा मन मारकर तिरस्कारपूर्वक बिना श्रद्धा के दिया जाता है, वह तामस दान कहा जाता है जो व्यर्थ है।(17/22)*

❖ *अध्याय 17 के श्लोक 21 से 22 तक का भाव है इसमें भगवान तप व यज्ञ कैसे होते हैं? तथा उनके प्रकार व फल बताएँ? क्योंकि यज्ञ, दान, तप का लाभ भी परम अक्षर ब्रह्म (पूर्णब्रह्म) ही देता है। इसलिए कहा है कि उस परमात्मा (परम अक्षर ब्रह्म) के निमित किया कर्म श्रेष्ठ है तथा पूर्ण मुक्ति दाता है। अन्य परमात्माओं (ब्रह्म व परब्रह्म) के निमित कर्म पूर्ण मुक्ति दायक नहीं है। फिर भी ब्रह्म से अधिक सुखदाई परमात्मा परब्रह्म है परंतु पूर्ण सुखदायक, जन्म-मरण से पूर्ण मुक्त करने वाला भगवान पूर्णब्रह्म ही है। वह साहेब कबीर हैं। इसी को सत साहेब कहते हैं।*

अध्याय 17 के 23 से 28 श्लोकों का हिन्दी अनुवाद

❖ *विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 तथा 16-17 में संसार को एक वृक्ष के समान बताया है। उस वृक्ष की जड़ तो परम अक्षर ब्रह्म यानि पूर्ण ब्रह्म बताया है। जिसे परम अक्षर ब्रह्म, सत्य पुरूष, परम दिव्य पुरूष आदि-आदि नामों से भी जाना जाता है। तना अक्षर पुरूष बताया है तथा डार क्षर पुरूष यानि काल ब्रह्म बताया है। तीनों देवताओं (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) को शाखा बताया है। तीनों देवताओं और अन्य देवताओं की साधना गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 में व्यर्थ बताई है। गीता अध्याय 7 के ही श्लोक 16-18 में गीता ज्ञान दाता ने अपनी साधना से होने वाली गति यानि मोक्ष अनुत्तम बताया है तथा गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में अपनी भक्ति साधना का केवल एक अक्षर ॐ (ओम्) मंत्र अंतिम श्वांस तक स्मरण करने को बताया है। गीता अध्याय 8 के ही श्लोक 3 में परम अक्षर ब्रह्म अपने से अन्य समर्थ प्रभु बताया है तथा इसी अध्याय 8 के श्लोक 5 तथा 7 में अपनी पूजा करने को कहा है तथा श्लोक 8-10 में परम अक्षर ब्रह्म की भक्ति की प्रेरणा की है। उसकी प्राप्ति के मंत्रों की जानकारी इस अध्याय 17 के श्लोक 23-28 में बताई है जिससे गीता अध्याय 15 के श्लोक 4 में कहा परम पद प्राप्त होता है जहाँ जाने के पश्चात्*

साधक लौटकर कभी संसार में नहीं आता तथा गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कही परमशांति प्राप्त होती है तथा सनातन परम धाम प्राप्त होता है। गीता ज्ञान दाता ने अपनी भक्ति का मंत्र केवल एक ॐ (ओम्) अक्षर कहा है। ओम् (ॐ) की साधना से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में स्पष्ट किया है कि ब्रह्मलोक में गए साधक भी पुनरावर्ती में रहते हैं यानि उनका जन्म-मरण रहता है। ब्रह्मलोक में भक्ति की कमाई यानि पुण्य समाप्त होने के पश्चात् साधक का पुनर्जन्म होता है यानि जन्म-मरण से मुक्ति नहीं मिलती। इस अध्याय 17 श्लोक 23-28 में ॐ मंत्र जो क्षर पुरूष का है तथा तत् मंत्र जो सांकेतिक है, यह अक्षर पुरूष की साधना का है तथा सत् मंत्र भी सांकेतिक है। यह परम अक्षर पुरूष की साधना का है। इन तीनों मंत्रों के जाप से पूर्ण मोक्ष प्राप्त होता है। जैसी गीता अध्याय 18 श्लोक 62 तथा 66 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि हे अर्जुन! तू सर्व भाव से उस परमेश्वर की शरण में जा। उस परमेश्वर की ही कृपा से तू परम शांति को तथा (शाश्वतम् स्थानम्) सनातन परम धाम यानि अमर लोक को प्राप्त होगा। यह गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है। फिर गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में गीता ज्ञान देने वाले काल ब्रह्म यानि क्षर पुरूष ने स्पष्ट किया है कि यदि उस परमेश्वर यानि परम अक्षर पुरूष की शरण में जाना है तो (सर्व धर्मान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज) मेरी साधना यानि जो ॐ (ओम्) की साधना है, उसकी धार्मिक कमाई यानि मेरे स्तर की सब धार्मिक क्रियाओं की भक्ति मुझ में त्यागकर उस एकम् यानि जिसके समान अन्य कोई नहीं है। उस समर्थ की शरण में (व्रज) जाओ। मैं तुझे मेरी भक्ति के प्रतिफल में सब पापों से मुक्त कर दूँगा। तू चिंता मत कर।

अध्याय 17 श्लोक 23 का अनुवाद : ओं (ॐ) मन्त्र ब्रह्म यानि क्षर पुरूष का तत् यह सांकेतिक मंत्र परब्रह्म यानि अक्षर पुरूष का सत् यह सांकेतिक मन्त्र सच्चिदानंद घन ब्रह्म यानि परम अक्षर पुरूष (पूर्णब्रह्म) का है। ऐसे यह तीन प्रकार के पूर्ण परमात्मा के नाम सुमरण का आदेश कहा है और सृष्टि के आदिकाल में विद्वानों ने उसी तत्वज्ञान के आधार से वेद तथा यज्ञादि बनाए। उसी आधार से साधना करते थे।(23)

श्लोक 24 का अनुवाद : इसलिये भगवान की स्तुति करने वालों तथा शास्त्रविधि से नियत क्रियाऐं बताने वालों की यज्ञ, दान और तप व स्मरण क्रियाएँ सदा 'ऊँ' इस नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं अर्थात् तीनों नामों के जाप में ओं से ही श्वांस द्वारा प्रारम्भ किया जाता है।(24)

अध्याय 17 श्लोक 25 का अनुवाद : अक्षर पुरूष अर्थात् परब्रह्म के तत् मन्त्र के जाप पर श्वांस इति अर्थात् अन्त होता है तथा फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ कल्याण की इच्छा वाले अर्थात् केवल जन्म-मृत्यु से पूर्ण छुटकारा चाहने वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं अर्थात् यह तत जाप सांकेतिक मन्त्र है जो परब्रह्म का जाप मन्त्र है और सतनाम के श्वांस द्वारा जाप में तत् मन्त्र पर श्वांस का इति अर्थात् अन्त होता है।(25)

अध्याय 17 श्लोक 26 का अनुवाद : 'सत्' यह सारनाम का सांकेतिक मंत्र है। इसे पूर्ण परमात्मा के नाम के साथ सत्यभाव में और श्रेष्ठभाव में प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें ही सत् शब्द अर्थात् सारनाम का प्रयोग किया जाता है अर्थात् पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों ओं व तत् के साथ जोड़ा जाता है।(26)

अध्याय 17 श्लोक 27 का अनुवाद : तथा यज्ञ तप और दान में जो स्थिति है भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्मा के लिये किए हुए शास्त्र अनुकूल किया भक्ति कर्म में ही वास्तव में सत् शब्द के अन्त में कोई अन्य शब्द तत्वदर्शी संत द्वारा कहा जाता है। जैसे सत् साहेब,

सतगुरू, सत् पुरूष, सतलोक, सतनाम आदि शब्द बोले जाते हैं।(27)

अध्याय 17 श्लोक 28 का अनुवाद : हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त 'असत्' अर्थात् व्यर्थ है इस प्रकार कहा जाता है इसलिये वह हमारे लिए न तो इस लोकमें लाभदायक है और न मरनेके बाद ही।(28)

।। ऊँ-तत्-सत् का विस्तृत वर्णन।।

विशेष :- गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित तत्वदर्शी संत ही पूर्ण परमात्मा के तत्वज्ञान को सही बताता है, उन्हीं से पूछो, मैं (गीता बोलने वाला प्रभु) नहीं जानता। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तक तथा 16-17 तक भी है। इसीलिए यहाँ गीता अध्याय 17 श्लोक 23 से 28 तक का भाव समझें।

अध्याय 17 के श्लोक 23 से 28 तक में कहा है कि पूर्ण परमात्मा के पाने के ऊँ, तत्, सत् यह तीन नाम हैं। इस तीन नाम के जाप का प्रारम्भ श्वांस द्वारा ओं (ॐ) नाम से किया जाता है। तत्वज्ञान के अभाव से स्वयं निष्कर्ष निकाल कर शास्त्रविधि सहित साधना करने वाले ब्रह्म तक की साधना में प्रयोग मन्त्रों के साथ 'ऊँ' मन्त्र लगाते हैं। जैसे 'ऊँ भागवते वासुदेवाय नमः', 'ऊँ नमो शिवायः' आदि-2। यह जाप (काल-ब्रह्म यानि क्षर पुरूष तक व उनके आश्रित तीनों ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शंकर जी से लाभ लेने के लिए) स्वर्ग प्राप्ति तक का है। फिर भी शास्त्र विधि रहित होने से उपरोक्त मंत्र व्यर्थ हैं, बेशक इन मंत्रों से कुछ लाभ भी प्राप्त हो।

तत् नाम का तात्पर्य है कि (अक्षर पुरूष = अक्षर ब्रह्म) परब्रह्म की साधना का सांकेतिक मन्त्र है। यह तत् मन्त्र सांकेतिक है। वह पूर्ण गुरु से लेकर जपा जाता है। स्वयं या अनाधिकारी से प्राप्त करके जाप करना भी व्यर्थ है। यह तत् मन्त्र इष्ट की प्राप्ति के लिए विशेष मन्त्र है तथा सत् जाप मन्त्र पूर्ण परमात्मा का है जो सारनाम के साथ जोड़ा जाता है। उससे पूर्ण मुक्ति होती है। सतशब्द अविनाशी का प्रतीक है। वह सारनाम है। लेकिन वेदों व शास्त्रों में न तत् नाम है और न ही सत मन्त्र है। केवल ऊँ नाम है। आदरणीय गरीबदास साहेब जी (साहेब कबीर के शिष्य) संत कहते हैं कि कबीर परमेश्वर ने बताया कि जो गुप्त सोहं मंत्र मैं ही इस काल लोक में लाया हूँ तथा सतशब्द (सारनाम) गुप्त रहा है, वह केवल अधिकारी को ही दिया जाता है।

गरीब, सोहं शब्द हम जग में लाए। सार शब्द हम गुप्त छुपाए।।

यह सत शब्द (सारशब्द) पूर्ण गुरु ही दे सकता है। अन्य जप, दान, यज्ञ आदि श्रद्धा से व शास्त्रानुकूल किए जाऐं तो उनका जो फल निहीत (कुछ समय स्वर्ग प्राप्ति) है वह मिल जाएगा। यदि ऐसे नहीं किए तो वह फल भी नहीं है। फिर भी जब तक सारनाम (सत्शब्द) नहीं मिला तो ओ३म तथा तत् मंत्र (सांकेतिक) भी व्यर्थ हैं। कुछ साधक केवल 'ऊँ-तत्-सत्' इसी को मूल मन्त्र मान कर बार-2 अभ्यास करते हैं जो व्यर्थ है, बिना श्रद्धा के किया हुआ धार्मिक अनुष्ठान या जप न तो इसी लोक में लाभदायक है तथा न मरने के बाद। इसलिए गुरु आज्ञानुसार पूर्ण श्रद्धा भाव से आध्यात्मिक कर्म लाभदायक हैं। भक्ति चाहे नीचे के प्रभुओं की करो, चाहे पूर्ण परमात्मा सतलोक प्राप्ति की करो, वह साधना शास्त्रानुकूल तथा श्रद्धा पूर्वक ही लाभदायक है।

केवल सोहं शब्द तक की साधना भी काल जाल तक है। परमेश्वर कबीर (कविर्देव) जी की अमृत वाणी :-

कबीर, जो जन होगा जौहरी, लेगा शब्द विलगाय। सोहं – सोहं जप मुए, व्यर्था जन्म गंवाए।।

कोटि नाम संसार में, उनसे मुक्ति न होए। सारनाम मुक्ति का दाता, वाकुं जाने न कोए।।

भावार्थ :- परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ ने कहा है कि जिसको तत्वज्ञान होगा, वह पारखी होता है। वह नाम के भेद को समझेगा। केवल सोहं नाम जाप से मोक्ष नहीं है। केवल सोहं जाप करने से मानव जीवन नष्ट हो जाता है। सत्यनाम दो अक्षर का होता है। उसके पश्चात् सारनाम का जाप करते हैं। सब मंत्रों के जाप की साधना से जीव का कल्याण होता है।

आदरणीय गरीबदास साहेब जी की अमत वाणी :-

गरीब, सोहं ऊपर और है, सतसुकत एक नाम। सब हंसों का बास है, नहीं बस्ती नहीं गाम।।
सोहं में थे ध्रुव प्रहलादा, ओ३म सोहं वाद विवादा।
नामा छिपा ओ३म तारी, पीछे सोहं भेद विचारी। सार शब्द पाया जद लोई, आवागवन बहुर न होई।।

भावार्थ :- उपरोक्त अमत वाणी में परमात्मा प्राप्त महान आत्मा आदरणीय गरीबदास साहेब जी ने कहा है कि जो केवल ओ३म व सोहं के मंत्र जाप तक सीमित है, वे भी काल के जाल में ही हैं। जैसे पूर्ण परमात्मा कविर्देव चारों युगों में आते हैं, तब पूर्ण विधि स्वयं ही वर्णन करके जाते हैं। इसी पूर्ण परमात्मा के नाम रहते हैं - सतयुग में सतसुकत जी, त्रेतायुग में मुनिन्द्र जी, द्वापर युग में करूणामय जी तथा कलयुग में वास्तविक कविर्देव नाम से ही प्रकट होते हैं। जब पूर्ण ब्रह्म कविर्देव सतयुग में सतसकुत नाम से आए थे तो वास्तविक ज्ञान वर्णन करते थे। जो उस समय के ऋषियों द्वारा वर्णित ज्ञान के विपरित (सत्य) ज्ञान था। क्योंकि ऋषिजन वेदों को ठीक से न समझ कर ओ३म मंत्र को पूर्ण ब्रह्म का मानकर जाप करते तथा कराते थे तथा ब्रह्म को पूर्ण ब्रह्म ही बताते थे। पूर्ण परमात्मा कहा करते थे कि ब्रह्म से ऊपर परब्रह्म, उससे ऊपर पूर्ण ब्रह्म पूर्ण शक्ति युक्त प्रभु है। इस ज्ञान को स्वीकार न करके उस परमपिता को वामदेव (उल्टा ज्ञान देने वाला) कहने लगे। वास्तविक सत्सुकत नाम भुलाकर प्रचलित उर्फ नाम वामदेव से ही जानने लगे। यही पूर्ण परमात्मा श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी को मिले, तत्वज्ञान समझाया। तीनों प्रभुओं ने प्रथम मंत्र प्राप्त किया, परन्तु आगे नाम प्राप्त करने में कालवश होकर रूची नहीं रखी। यही परमात्मा श्री नारद जी आदि से भी मिलें। श्री नारद जी को भी उपदेश दिया। इनको केवल 'सोहं' मंत्र दिया। फिर नारद जी ने यही मंत्र ध्रुव तथा प्रहलाद को भी प्रदान किया जिससे वे भी काल जाल में ही रहे।

पूर्ण ब्रह्म कविरग्नि (कबीर परमेश्वर) पहली बार प्रमाणित मंत्रों (ओ३म - किलियम् - हरियम्- श्रीयम् - सोहं) में से कोई एक मंत्र साधक को प्रदान करते थे। फिर साधक की पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने की अति उत्सुक्ता देख कर फिर वास्तविक मंत्र ओ३म + तत् (सांकेतिक) प्रदान करते थे, जिसे सतनाम कहा जाता है। जैसे नारद जी को मार्ग दर्शन किया तो नारद जी ने उत्सुकता (लग्न) तो बहुत लगाई, परन्तु मन में शंका फिर भी रही कि आज तक अन्य किसी ऋषि-महर्षि ने पूर्ण परमात्मा का विवरण नहीं दिया, क्या पता सत्य है या असत्य? इस एक महात्मा पर विश्वास करना बुद्धिमता नहीं। यह भाव अन्तःकरण में समाया रहा। ऊपर से औपचारिकता आवश्यकता से अधिक करते रहे। अंतर्यामी पूर्ण परमेश्वर सतसुकत उर्फ वामदेव जी ने महर्षि नारद जी को वास्तविक मंत्र (ओ३म + तत्) नहीं प्रदान किया। केवल सोहं नाम प्रदान किया तथा नारद जी की प्रार्थना पर उसे केवल (सोहं) एक नाम दान करने की आज्ञा दे दी। पूर्ण परमात्मा के सच्चे संत के अतिरिक्त यदि कोई ब्रह्म तक के साधक अधिकारी संत से उपदेश लेता है तो काल (ब्रह्म) उसे ब्रह्मलोक में बने नकली (झूठे) सत्यलोक में भेज देता है। वहाँ उन्हें उच्च पद प्रदान कर देता है

तथा सोहं मंत्र के जाप की कमाई को समाप्त करवा कर फिर कर्माधार पर नरक, फिर पथ्वी पर नाना प्रकार के प्राणियों के शरीर में पीड़ा बनी रहती है। ओ३म नाम के जाप के साधक ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में चले जाते हैं तथा फिर स्वर्ग सुख भोगकर जन्म-मत्यु तथा नरक के विकट चक्र में पड़े रहते हैं। जो दो मंत्र का सत्यनाम जिसमें एक ओ३म मंत्र + तत् मंत्र (गुप्त) है, को मुझ दास से प्राप्त करके जो साधक साधना करता है और तीसरे (सत्) नाम को प्राप्त करने योग्य नहीं हुआ तथा देहान्त हो गया, वह साधक काल के हाथ नहीं लगेगा। पूर्ण परमात्मा कविर् देव ने ब्रह्मण्ड में एक ऐसा स्थान बनाया है जिसका न ब्रह्म (काल) को पता है और न अन्य ब्रह्मादिक को। वह साधक उस लोक में चला जाता है। वहाँ पर पूर्ण परमात्मा की तरफ से सर्व सुख लाभ मिलते रहते हैं। साधक की सत्यनाम की कमाई समाप्त नहीं होती। फिर कभी सत्यभक्ति युग आने पर उन्हीं पुण्यात्माओं को मानव शरीर प्रदान कर देता है। पूर्व सत्यनाम (सच्चे नाम) की कमाई के आधार पर जितनी जिसने कमाई की थी, लगातार कई मनुष्य जन्म मिलते रहेंगे, हो सकता है फिर किसी समय पूर्ण संत मिल जाए, जिससे शीघ्र ही भक्ति प्रारम्भ हो जाएगी तथा नाना प्रकार के प्राणियों के शरीर धारण करने व नरक में गिरने से बचा रहता है। परन्तु मुक्ति फिर भी बाकी है। उसके बिना सत्यनाम व केवल सोहं नाम का जाप भी व्यर्थ ही सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार श्री नामदेव साहेब जी पहले ओ३म नाम को वास्तविक व अन्तिम प्रभु साधना का मंत्र जानकर निश्चिन्त थे। तब पूर्ण परमात्मा कविर् देव (कबीर साहेब) मिले। उनको तत्वज्ञान समझाया। श्री नामदेव जी की श्रद्धा देखकर परमात्मा ने केवल सोहं मंत्र प्रदान किया। फिर बहुत समय उपरान्त श्री नामदेव जी की असीम श्रद्धा तथा पूर्ण प्रभु पाने की तड़फ देखकर नए सिरे से ओ३म + तत् नाम जोड़ कर सत्यनाम प्रदान किया तथा तत्पश्चात् सारनाम (सत् शब्द) दिया, जिसे सारशब्द भी कहा है। इसप्रकार श्रीनामदेव साहेब जी की पूर्ण मुक्ति हुई। इससे पूर्व की वाणी श्री नामदेव की संग्रह करके भक्तजन इन्हें ब्रह्म उपासक ही मानते हैं।

श्रद्धा-भाव बिना भक्ति व्यर्थ

।। भगवान कष्ण का विदुर के घर अलूणा साक खाना।।

भक्ति करै बिन भाव रे, सो कोनै काजा। विदुर कै जीमन उठ गए, तज दूर्योधन राजा।।
व्यंजन छतीसों छाड़ कर पाया साक अलूणा। थाल नहीं था विदूर के, धनि जीमत दौंना।।

भावार्थ :- एक समय भगवान कष्ण (तीन लोक के धनी) कौरवों तथा पाण्डवों का समझौता करवाने के लिए इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आए। उस समय दुर्योधन राजा था। लेकिन दुर्योधन ने भगवान की सलाह को नहीं माना। जिसमें श्री कष्णचन्द्र जी ने कहा था कि आप पाण्डवों को आधा राज दे दो। लड़ाई अच्छी नहीं होती। अंत में यह भी कह दिया था कि पाण्डवों को केवल पाँच (5) गाँव दे दो। परंतु दुर्योधन इस बात पर भी तैयार नहीं हुआ और कहा कि सूई की नौंक के बराबर भी स्थान पाण्डवों के लिए नहीं है। आपने मेरे (दुर्योधन के) यहाँ खाना खाना है क्योंकि राजा लोग राजाओं के घर भोजन करते शोभा देते हैं। श्री कष्ण जी ने देखा कि यहाँ भाव नहीं है। केवल औपचारिकता (Formalty) है। श्री कष्ण जी श्रद्धालु भक्त विदुर जी के घर (झौपड़ी) पर पहुँच गए। विदुर द्वारा भोजन के लिए प्रार्थना करने पर भगवान ने कहा कि भूख लगी है। जो बना है वही लाओ। यह कह मिट्टी के दौने में स्वयं शाक (जो बिना नमक वाला था) डाल कर खाने लगे। यह देखकर विदुर

जी शर्म के मारे अपने भाग्य को कोस भी रहे हैं और सराह भी रहे हैं। कोस तो इसलिए रहे हैं कि मैं इतना निर्धन हूँ कि भगवान को स्वादिष्ट भोजन नहीं करा सका। मालिक क्या इस गरीब के घर बार-2 आते हैं? सराह इसलिए रहा था कि मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि स्वयं त्रिलोक स्वामी भगवान चल कर दर्शन देने आए हैं। न जाने कौन से जन्म का कोई शुभ कर्म उदय हुआ है जो मालिक को इतने प्यार से देख पाया हूँ।

कबीर, साधु भूखा भाव का, धन का भूखा ना। जो कोई भूखा धन का, वो तो साधु ना।।

विशेष :- उस दिन कौरवों ने श्री कष्ण जी को अपने राजमहल में भोजन करने का न्योता दे रखा था। पाण्डवों ने भी अपने घर भोजन करने का न्योता दे रखा था। भक्त विदुर जी ने भी अपने घर भोजन करने का न्योता दे रखा था। श्री कष्ण जी कौरवों के दुर्व्यव्हार से दुःखी होकर यह विचार करके कि मैं यदि पाण्डवों के घर भोजन खाऊँगा तो विदुर को दुःख होगा। यदि विदुर के घर भोजन खाऊँगा तो पाण्डव दुःखी होंगे। सीधे द्वारिका को चले गए। भक्त विदुर जी को आशा नहीं थी कि श्री कष्ण जी मेरे घर आऐंगे क्योंकि श्री कष्ण पाण्डवों के रिश्तेदार (अर्जुन के साले) होने के कारण बहुत बार हस्तिनापुर (वर्तमान में पुरानी दिल्ली) में आया और रूका करते थे। विदुर भक्त भी प्रत्येक बार अपने घर आने की कहते थे। कार्य की अधिकता समय के अभाव से पहले कभी भी श्री कष्ण विदुर जी के घर चाहकर भी नहीं जा पाए थे। उस बार भी विदुर जी को श्री कष्ण जी के अपने घर आने की आशा शून्य थी। इसलिए विशेष तैयारी नहीं की थी। पूर्ण परमात्मा ने अपने भक्त विदुर का सम्मान जगत में बढ़ाने के लिए श्री कष्ण रूप धारण करके विदुर भक्त के घर बिना नमक (अलुणां) साग खाया था। महिमा श्री कष्ण जी की हुई जो आज तक उदाहरण है। समर्थ को अपनी महिमा बनाने की इच्छा नहीं है। भक्ति को बढ़ावा देना उद्देश्य रहता है। आगे की कथा से भी यही स्पष्ट होगा कि सुपच सुदर्शन के रूप में परमेश्वर कबीर जी ही गए थे।

।। पाण्डवों की यज्ञ में सुपच सुदर्शन द्वारा शंख बजाना।।

सर्व विदित है कि महाभारत के युद्ध में अर्जुन युद्ध करने से मना करके शस्त्र त्याग कर युद्ध के मैदान में दोनों सेनाओं के बीच में खड़े रथ के पिछले हिस्से में आंखों से आँसू बहाता हुआ बैठ गया। तब भगवान कष्ण के अंदर प्रवेश काल शक्ति (ब्रह्म) ने अर्जुन को युद्ध करने की राय दी। तब अर्जुन ने कहा भगवान! यह महापाप मैं नहीं करूँगा। इससे अच्छा तो भिक्षा का अन्न भी खाकर गुजारा कर लेंगे। तब भगवान काल श्री कष्ण के शरीर में प्रवेश काल ने कहा कि अर्जुन युद्ध कर। तुझे कोई पाप नहीं लगेगा। देखें गीता जी के अध्याय 11 श्लोक 33, अध्याय 2 श्लोक 37, 38 में।

महाभारत में लेख (प्रकरण) आता है कि कष्ण जी के कहने से अर्जुन ने युद्ध करना स्वीकार कर लिया। घमासान युद्ध हुआ। करोड़ों व्यक्ति व सर्व कौरव युद्ध में मारे गए और पाण्डव विजयी हुए। तब पाण्डव प्रमुख युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन पर बैठाने के लिए स्वयं भगवान कष्ण ने कहा तो युधिष्ठिर ने यह कहते हुए गद्दी पर बैठने से मना कर दिया कि मैं ऐसे पाप युक्त राज्य को नहीं करूंगा। जिसमें करोड़ों व्यक्ति मारे गए थे। उनकी पत्नियाँ विधवा हो गई, करोड़ों बच्चे अनाथ हो गए, अभी तक उनके आँसू भी नहीं सूखे हैं। किसी प्रकार भी बात बनती न देख कर श्री कष्ण जी ने कहा कि आप भीष्म जी से सलाह कर लो। क्योंकि जब व्यक्ति स्वयं फैसला लेने में असफल रहे तब किसी स्वजन से विचार कर लेना चाहिए। युधिष्ठिर ने यह बात स्वीकार कर ली। तब श्री कष्ण जी

युधिष्ठिर को साथ ले कर वहाँ पहुँचे जहाँ पर श्री भीष्म शर (तीरों की) सैय्या (चारपाई) पर अंतिम श्वांस गिन रहे थे, वहाँ जा कर श्री कष्ण जी ने भीष्म से कहा कि युधिष्ठिर राज्य गद्दी पर बैठने से मना कर रहे हैं। कप्या आप इन्हें राजनीति की शिक्षा दें।

भीष्म जी ने बहुत समझाया परंतु युधिष्ठिर अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुआ। यही कहता रहा कि इस पाप से युक्त रूधिर से सने राज्य को भोग कर मैं नरक प्राप्ति नहीं चाहूँगा। फिर श्री कष्ण जी ने कहा कि आप एक धर्म यज्ञ करो। जिससे आपको युद्ध में हुई हत्याओं का पाप नहीं लगेगा। इस बात पर युधिष्ठिर सहमत हो गया और एक धर्म यज्ञ की। फिर राज गद्दी पर बैठ गया। हस्तिनापुर (दिल्ली) का राजा बन गया।

(प्रमाण :-- सुखसागर के पहले स्कन्ध के आठवें अध्याय से सहाभार पष्ठ नं. 48 से 53 आठवाँ तथा नौवां अध्याय।।)

कुछ वर्षो प्रयान्त युधिष्ठिर को भयानक स्वपन आने शुरु हो गए। जैसे बहुत सी औरतें रोती-बिलखती हुई अपनी चूड़ियाँ फोड़ रहीं हैं तथा उनके मासूम बच्चे अपनी मां के पास खड़े कुछ बैठे पिता-पिता कह कर रो रहे हैं मानों कह रहे हो हे राजन्! हमें भी मरवा दे, भेज दे हमारे पिता के पास। कई बार बिना शीश के धड़ दिखाई देते हैं। किसी की गर्दन कहीं पड़ी है, धड़ कहीं पड़ा है, हा-हा कार मची हुई है। युधिष्ठिर की नींद उचट जाती है, घबरा कर बिस्तर पर बैठ कर हाँफने लग जाता है। सारी-2 रात बैठ कर या महल में घूम कर व्यतीत करता है। एक दिन द्रौपदी ने बड़े पति की यह दशा देखी परेशानी का कारण पूछा तो युधिष्ठिर कुछ नहीं- कुछ नहीं कह कर टाल गए। जब द्रौपदी ने कई रात्रियों में युधिष्ठिर की यह दुर्दशा देखी तो एक दिन चारों (अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव) को बताया कि आपका बड़ा भाई बहुत परेशान है। कारण पूछो। तब चारों भाईयों ने बड़े भईया से प्रार्थना करके पूछा कि कप्या परेशानी का कारण बताओ। अधिक आग्रह करने पर युद्धिष्ठर ने अपनी सर्व कहानी सुनाई। पाँचों भाई इस परेशानी का कारण जानने के लिए भगवान श्रीकष्णजी के पास गए तथा बताया कि बड़े भईया युधिष्ठिर जी को भयानक स्वपन आ रहे हैं। जिनके कारण उनकी रात्रि की नींद व दिन का चैन व भूख समाप्त हो गई है। कप्या कारण व समाधान बताएँ। सर्व बात सुनकर श्री कष्ण जी बोले युद्ध में किए हुए पाप परेशान कर रहे हैं। इन पापों का निवारण यज्ञ से होता है।

गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 13 का हिन्दी अनुवाद : यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट (पूर्ण परमात्मा) को भोग लगाने के बाद बने प्रसाद को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं जो पापी लोग अपना शरीर पोषण करने के लिये ही अन्न पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं अर्थात् यज्ञ करके सर्व पापों से मुक्त हो जाते हैं। और कोई चारा न देख कर पाण्डवों ने श्री कष्ण जी की सलाह स्वीकार कर ली। यज्ञ की तैयारी की गई। सर्व पथ्वी के मानव, ऋषि, सिद्ध, साधु व स्वर्ग लोक के देव भी आमन्त्रित करने को, श्री कष्ण जी ने कहा कि जितने अधिक व्यक्ति भोजन खाएंगें उतना ही अधिक पुण्य होगा। परंतु संतों व साधुओं से विशेष लाभ होता है उनमें भी कोई परम शक्ति युक्त संत होगा वह पूर्ण लाभ दे सकता है तथा यज्ञ पूर्ण होने का साक्षी एक पांच मुख वाला (पंचजन्य) शंख एक सुसज्जित ऊँचे आसन पर रख दिया तथा कहा कि जब इस यज्ञ में कोई भक्ति की कमाई वाला (परम शक्ति युक्त) संत भोजन ग्रहण करेगा तो यह शंख स्वयं आवाज करेगा। इतनी गूँज होगी की पूरी पथ्वी पर तथा स्वर्ग लोक तक आवाज सुनाई देगी।

यज्ञ की तैयारी हुई। निश्चित दिन को सर्व आदरणीय आमन्त्रित भक्तगण, अठासी हजार ऋषि, तेतीस करोड़ देवता, नौ नाथ, चौरासी सिद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि पहुँच गए। यज्ञ कार्य शुरु हुआ। यज्ञ का बचा प्रसाद (भण्डारा)सर्व उपस्थित महानुभावों व भक्तों तथा जनसाधारण को बरताया (खिलाया)। स्वयं भगवान कष्ण जी ने भी भोजन खा लिया। परंतु शंख नहीं बजा। शंख नहीं बजा तो यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुई। उस समय युधिष्ठिर ने श्री कष्ण जी से पूछा - हे मधुसुदन! शंख नहीं बजा। सर्व महापुरुषों व आगन्तुकों ने भोजन ग्रहण कर लिया। कारण क्या है? श्री कष्ण ने कहा कि इनमें कोई सच्चा साधक (सतनाम व सारनाम उपासक) नहीं है। तब युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतने महा मण्डलेश्वर जिसमें वशिष्ट मुनि, मार्कण्डे, लोमष ऋषि, नौ नाथ(गोरखनाथ जैसे), चौरासी सिद्ध आदि-2 व स्वयं भगवान श्री कष्ण ने भी भोजन खा लिया। परंतु शंख नहीं बजा। कष्ण जी ने कहा ये सर्व मान बड़ाई के भूखें हैं। परमात्मा चाहने वाला कोई नहीं तथा अपनी मनमुखी साधना करके सिद्धि दिखा कर दुनियाँ को आकर्षित करते हैं। भोले लोग इनकी वाह-2 करते हैं तथा इनके इर्द-गिर्द मण्डराते हैं। ये स्वयं भी पशु जूनी में जाएंगे तथा अपने अनुयाईयों को नरक ले जाएंगे।

गरीब, साहिब के दरबार में, गाहक कोटि अनन्त। चार चीज चाहै हैं, रिद्धि सिद्धि मान महंत।।
गरीब, ब्रह्म रन्द्र के घाट को, खोलत है कोई एक। द्वारे से फिर जाते हैं, ऐसे बहुत अनेक।।
गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं हाथ। पथ्वी डोबन उतरे, कह–कह मीठी बात।।
गरीब, बीजक की बातां कहैं, बीजक नाहीं पास। ओरों को प्रमोदही, अपन चले निरास।।

भावार्थ :- परमात्मा की भक्ति करने वालों को तत्वज्ञान न होने के कारण शास्त्रविधि त्यागकर साधना करके मोक्ष के स्थान पर नरक व अन्य प्राणियों के शरीर प्राप्त करते हैं। उनकी साधना का उद्देश्य रिद्धि-सिद्धि प्राप्त करना है। काल ब्रह्म के लोक में अष्ट सिद्धि - नौ निद्धि (रिद्धि) हैं। कठोर तप या जन्त्र-मन्त्र करके इनमें से एक या दो सिद्धि या रिद्धि प्राप्त हो जाती हैं। उनके कारण मान-बड़ाई की चाह बढ़ जाती है। महंत यानि किसी आश्रम की गद्दी प्राप्त करके महंत की पदवी प्राप्त करना ही भक्ति का उद्देश्य होता है जो मानव जीवन का नाशक है। फिर वे महंत जी गुरू पद पर विराजमान होकर अनुयाईयों को बीजक की बात बताने का दावा करते हैं यानि तत्वज्ञान बताने की बातें करते हैं। उनके पास बीजक (तत्वज्ञान) नहीं है। वे पथ्वी के मानव को नष्ट करने के लिए जन्मे हैं। मीठी-मीठी बातें बनाकर जीवों को अपने जाल में फंसाकर काल जाल में रखते हैं। अन्य को बीजक ज्ञान (तत्वज्ञान) बताने की कहते हैं, उनके पास बीजक नहीं है। जिस कारण से स्वयं भी संसार से भक्तिहीन जाऐंगे, निराशा ही हाथ लगेगी। तत्वज्ञान न होने के कारण त्रिवेणी के सामने वाले ब्रह्मरंद्र को नहीं खोल पाते। ऐसे अनेकों हैं। कोई तत्वज्ञानी ही सतगुरू की कपा से सत्य साधना करके ब्रह्मरंद्र के द्वार को खोल पाता है यानि मुक्ति पाता है।

{**प्रमाण के लिए गीता जी के कुछ श्लोक :--**

अध्याय 9 का श्लोक 20

त्रैविद्याः, माम्, सोमपाः, पूतपापाः, यज्ञैः, इष्टवा, स्वर्गतिम्, प्रार्थयन्ते,
ते, पुण्यम्, आसाद्य, सुरेन्द्रलोकम्, अश्नन्ति, दिव्यान्, दिवि, देवभोगान्।।20।।

अनुवाद : (त्रैविद्याः) तीनों वेदों में (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद, चौथा अथर्ववेद तो विज्ञान की जानकारी देता है। सष्टि उत्पत्ति का ज्ञान है, भक्ति का कम है।) विधान किए हुए भक्ति कर्मों से (सोमपाः) सोमरसको पीनेवाले (पूतपापाः) पापरहित पुरुष (माम्) मुझको (यज्ञैः) यज्ञोंके द्वारा (इष्टवा) पूज्य देव के रूप में पूज कर

(स्वर्गतिम्) स्वर्गकी प्राप्ति (प्रार्थयन्ते) चाहते हैं (ते) वे पुरुष (पुण्यम्) अपने पुण्योंके फलरूप (सुरेन्द्रलोकम्) इन्द्र के लोक स्वर्गलोक को (आसाद्य) प्राप्त होकर (दिवि) स्वर्गमें (दिव्यान्) दिव्य (देवभोगान्) देवताओंके भोगोंको (अश्नन्ति) भोगते हैं।

अध्याय 9 का श्लोक 21

ते, तम्, भुक्त्वा, स्वर्गलोकम्, विशालम्, क्षीणे, पुण्ये, मर्त्यलोकम्, विशन्ति,
एवम्, त्रयीधर्मम्, अनुप्रपन्नाः, गतागतम्, कामकामाः, लभन्ते। ।21।।

अनुवाद : (ते) वे (तम्) उस (विशालम्) विशाल (स्वर्गलोकम्) स्वर्गलोकको (भुक्त्वा) भोगकर (पुण्ये) पुण्य (क्षीणे) क्षीण होने पर (मर्त्यलोकम्) मत्युलोक को (विशन्ति) प्राप्त होते हैं। (एवम्) इस प्रकार (त्रयीधर्मम्) तीनों वेदोंमें कहे हुए आध्यात्मिक कर्मका (अनुप्रपन्नाः) आश्रय लेने वाले और (कामकामाः) भोगों की कामनावस (गतागतम्) बार–बार आवागमन को (लभन्ते) प्राप्त होते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 17

आत्सम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः,
यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्। ।17।।

अनुवाद : (ते) वे (आत्मसम्भाविताः) अपनेआपको ही श्रेष्ठ माननेवाले (स्तब्धाः) घमण्डी पुरुष (धनमानमदान्विताः) धन और मानके मदसे युक्त होकर (नामयज्ञैः) केवल नाममात्रके यज्ञोंद्वारा (दम्भेन) पाखण्डसे (अविधिपूर्वकम्) शास्त्रविधिरहित (यजन्ते) पूजन करते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 18

अहंकारम्, बलम्, दर्पम्, कामम्, क्रोधम्, च, संश्रिताः,
माम्, आत्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तः, अभ्यसूयकाः। ।18।।

अनुवाद : (अहंकारम्) अहंकार (बलम्) बल (दर्पम्) घमण्ड (कामम्) कामना और (क्रोधम्) क्रोधादिके (संश्रिताः) परायण (च) और (अभ्यसूयकाः) दूसरोंकी निन्दा करनेवाले पुरुष (आत्मपरदेहेषु) प्रत्येक शरीर में परमात्मा आत्मा सहित तथा (माम्) मुझसे (प्रद्विषन्तः) द्वेष करनेवाले होते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 19

तान् अहम्, द्विषतः, क्रूरान्, संसारेषु, नराधमान्,
क्षिपामि, अजस्त्रम्, अशुभान्, आसुरीषु, एव, योनिषु। ।19।।

अनुवाद : (तान्) उन (द्विषतः) द्वेष करनेवाले (अशुभान्) पापाचारी और (क्रूरान्) क्रूरकर्मी (नराधमान्) नराधमोंको (अहम्) मैं (संसारेषु) संसारमें (अजस्त्रम्) बार–बार (आसुरीषु) आसुरी (योनिषु) योनियोंमें (एव) ही (क्षिपामि) डालता हूँ।

अध्याय 16 का श्लोक 20

आसुरीम्, योनिम्, आपन्नाः, मूढाः, जन्मनि, जन्मनि,
माम् अप्राप्य, एव, कौन्तेय, ततः, यान्ति, अधमाम्, गतिम्। ।20।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (मूढाः) वे मूढ (माम्) मुझको (अप्राप्य) न प्राप्त होकर (एव) ही (जन्मनि) जन्म (जन्मनि) जन्ममें (आसुरीम्) आसुरी (योनिम्) योनिको (आपन्नाः) प्राप्त होते हैं फिर (ततः) उससे भी (अधमाम्) अति नीच (गतिम्) गतिको (यान्ति) प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।

अध्याय 16 का श्लोक 23

यः, शास्त्रविधिम्, उत्सज्य, वर्तते, कामकारतः,
न, सः, सिद्धिम्, अवाप्नोति, न, सुखम्, न, पराम्, गतिम्। ।23।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे

मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको (अवाप्नोति)प्राप्त होता है (न)न (पराम्)परम (गतिम्)गतिको और(न) न (सुखम्) सुखको ही ।}

विशेष :- तत्वज्ञान के अभाव से ऋषियों व देवताओं में अहंकार व घमण्ड तथा मान-बड़ाई की चाह सदा रही है। क्रोध भी चर्म सीमा पर रहा। जिस कारण से पाण्डवों की यज्ञ उनके भोजन करने से सफल नहीं हुई। उदाहरण :- ऋषि विश्वामित्र व ऋषि वशिष्ठ जी का वैर भाव किसी से छिपा नहीं है। ऋषि वशिष्ठ ने ऋषि विश्वामित्र से कहा था कि आओ राज ऋषि। इस पर विश्वामित्र ने इतना क्रोध किया कि ऋषि वशिष्ठ के सौ पुत्रों की हत्या कर दी। ऐसा अनर्थ राक्षस करता है।

अन्य उदाहरण :- विष्णु पुराण के अध्याय 4 के श्लोक 72-94 तक प्रमाण है कि ऋषि वशिष्ठ जी ने राजा निमि को श्राप दिया कि तेरी मत्यु हो यानि सीधी भाषा, तू मर जा। उस राजा की मत्यु हो गई। उस राजा ने ऋषि वशिष्ठ को मत्यु होने का श्राप दिया जिससे उसकी भी मत्यु हो गई। कारण यह था :- राजा निमि के पुरोहित ऋषि वशिष्ठ जी थे। राजा निमि ने एक हजार वर्ष तक यज्ञ करने का संकल्प लिया और अपने पुरोहित वशिष्ठ से यज्ञ करने के लिए निवेदन किया। उसी दौरान देवराज इन्द्र ने पाँच सौ वर्षों तक यज्ञ करने के लिए ऋषि वशिष्ठ जी को होता (हवनकर्ता) बनने का निमंत्रण भेजा। ऋषि वशिष्ठ ने विचार किया कि पहले इन्द्र का यज्ञ कर दूँ। उसमें अधिक धन-माल मिलेगा। राजा का यज्ञ बाद में करूंगा। राजा को पता चला कि ऋषि वशिष्ठ इन्द्र का यज्ञ करने गए हैं तो उसने ऋषि गौतम जी से अपना एक हजार वर्ष का यज्ञ प्रारम्भ करवा दिया। इन्द्र का पाँच सौ वर्ष का यज्ञ करके ऋषि वशिष्ठ जी लौटे तो राजा को अन्य ऋषि से अनुष्ठान करवाता देखकर श्राप दे दिया कि निमि तेरी मौत हो जाए। राजा ने भी ऋषि को मत्यु का श्राप दे दिया और दोनों मर गए।

विचार करें पाठकजन! क्या ये ऋषि मोक्ष के अधिकारी हैं। ऐसे-ऐसे अनेकों प्रमाण हैं ऋषियों के घमण्ड, मान-बड़ाई, ईर्ष्यावश क्रोध से अनर्थ करने के। अधिक जानकारी के लिए कपा पढ़ें पुस्तक ''आध्यात्मिक ज्ञान गंगा'' में।

''पाण्डव यज्ञ की शेष कथा''

श्री कष्ण भगवान ने अपनी शक्ति से युधिष्ठिर को उन सर्व महा मण्डलेश्वरों के भविष्य में होने वाले जन्म दिखाए जिसमें किसी ने कैंचवे का, किसी ने भेड़-बकरी, भैंस व शेर आदि के रूप बना रखे थे।

यह सब देख कर युधिष्ठिर ने कहा - हे भगवन! फिर तो पथ्वी संत रहित हो गई। भगवान कष्ण ने कहा जब पथ्वी संत रहित हो जाएगी तो यहाँ आग लग जाएगी। सर्व जीव-जन्तु आपस में लड़ मरेंगे। यह तो पूरे संत की शक्ति से सन्तुलन बना रहता है। फिर मैं (भगवान विष्णु) पथ्वी पर आ कर राक्षस वत्ति के लोगों को समाप्त करता हूँ जिससे संत सुखी हो जाएं। जिस प्रकार जमींदार अपनी फसल से हानि पहुँचने वाले अन्य पौधों को जो झाड़-खरपतवार आदि को काट-काट कर बाहर डाल देता है तब वह फसल स्वतन्त्रता पूर्वक फलती-फूलती है। पूर्ण संत उस फसल में सिचांई सा सुख प्रदान करते हैं। पूर्ण संत सबको समान सुख देते हैं। जिस प्रकार पानी दोनों प्रकार के पौधों का पोषण करते हैं। उनमें सर्व जीव के प्रति दया भाव होता है। श्री कष्ण जी ने फिर कहा अब मैं आपको पूर्ण संत के दर्शन करवाता हूँ। एक महात्मा दिल्ली के उत्तर पूर्व में रहते हैं। उसको बुलवाना है। तब युधिष्ठिर ने कहा कि उस ओर संतों को आमन्त्रित करने का कार्य भीमसैन को

सौंपा था। पता करते हैं कि वह उन महात्मा तक पहुँचा या नहीं। भीमसैन को बुलाकर पूछा तो उसने बताया कि मैं उस से मिला था। उनका नाम स्वपच सुदर्शन है। बाल्मिकी जाति में गहस्थी संत हैं। एक झौंपड़ी में रहता है। उन्होंने यज्ञ में आने से मना कर दिया। इस पर श्री कष्ण जी ने कहा कि संत मना नहीं किया करते। सर्व वार्ता जो उनके साथ हुई है वह बताओ। तब भीम सैन ने आगे बताया कि मैंने उनको आमन्त्रित करते हुए कहा कि हे संत परवर! हमारी यज्ञ में आने का कष्ट करना। उनको पूरा पता बताया। उसी समय वे (सुदर्शन संत जी) कहने लगे भीम सैन आप के पाप के अन्न को खाने से संतों को दोष लगेगा। आपने तो घोर पाप कर रखा है। करोड़ों जीवों की हत्या करके आज आप राज्य का आनन्द ले रहे हो। युद्ध में वीरगति को प्राप्त सैनिकों की विधवा पत्नी व अनाथ बच्चे रह-रह कर अपने पति व पिता को याद करके फूट-फूट कर घंटों रोते हैं। बच्चे अपनी माँ से लिपट कर पूछ रहे हैं - माँ, पापा छुट्टी नहीं आए? कब आएंगे? हमारे लिए नए वस्त्र लाएंगे। दूसरी लड़की कहती है कि मेरे लिए नई साड़ी लाएंगे। बड़ी होने पर जब मेरी शादी होगी तब मैं उसे बाँधकर ससुराल जाऊँगी। वह लड़का (जो दस वर्ष की आयु का है) कहता है कि मैं अब की बार पापा (पिता जी) से कहूँगा कि आप नौकरी पर मत जाना। मेरी माँ तथा भाई-बहन आपके बिना बहुत दुःख पाते हैं। माँ तो सारा दिन-रात आपकी याद करके जब देखो एकांत स्थान पर रो रही होती है। या तो हम सबको अपने पास बुला लो या आप हमारे पास रहो। छोड़ दो नौकरी को। मैं जवान हो गया हूँ। आपकी जगह मैं फौज में जा कर देश सेवा करूंगा। आप अपने परिवार में रहो। आने दो पिता जी को, बिल्कुल नहीं जाने दूँगा। (उन बच्चों को दुःखी होने से बचाने के लिए उनकी माँ ने उन्हें यह नहीं बताया कि आपके पिता जी युद्ध में मर चुके हैं क्योंकि उस समय वे बच्चे अपने मामा के घर गए हुए थे। केवल छोटा बच्चा जो डेढ़ वर्ष की आयु का था वही घर पर था। अन्य बच्चों को जान बूझ कर नहीं बुलाया था।) इस प्रकार उन मासूम बच्चों की आपसी वार्ता से दुःख पाकर उनकी माँ का हृदय पति की याद के दुःख से भर आया। उसे हल्का करने के लिए (रोने के लिए) दूसरे कमरे में जा कर फूट-फूट कर रोने लगी। तब सारे बच्चे माँ के ऊपर गिरकर रोने लगे। सम्बन्धियों ने आकर शांत करवाया। कहा कि बच्चों को स्पष्ट बताओ कि आपके पिता जी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो गए। जब बच्चों को पता चला कि हमारे पापा (पिता जी) अब कभी नहीं आएंगे तब उस स्वार्थी राजा को कोसने लगे जिसने अपने भाई बटवारे के लिए दुनियाँ के लालों का खून पी लिया। यह कोई देश रक्षा की लड़ाई भी नहीं थी जिसमें हम संतोष कर लेते कि देश के हित में प्राण त्याग दिए हैं। इस खूनी राजा ने अपने ऐशो-आराम के लिए खून की नदी बहा दी। अब उस पर मौज कर रहा है। आगे संत सुदर्शन (स्वपच) बता रहे हैं कि भीम ऐसे-2 करोड़ों प्राणी युद्ध की पीड़ा से पीड़ित हैं। उनकी हाय आपको चैन नहीं लेने देगी चाहे करोड़ यज्ञ करो। ऐसे दुष्ट अन्न को कौन खाए? यदि मुझे बुलाना चाहते हो तो मुझे पहले किए हुए सौ (100) यज्ञों का फल देने का संकल्प करो अर्थात् एक सौ यज्ञों का फल मुझे दो तब मैं आपके भोजन पाऊँ। सुदर्शन जी के मुख से इस बात को सुन कर भीम ने बताया कि मैं बोला आप तो कमाल के व्यक्ति हो, सौ यज्ञों का फल मांग रहे हो। यह हमारी दूसरी यज्ञ है। आपको सौ का फल कैसे दें? इससे अच्छा तो आप मत आना। आपके बिना कौन सी यज्ञ सम्पूर्ण नहीं होगी। जब स्वयं भगवान कष्ण जी साथ हैं। सर्व वार्ता सुन कर श्री कष्ण जी ने कहा भीम! संतों के साथ ऐसा अभद्र-व्यवहार नहीं किया करते। सात समुद्रों का अंत पाया जा सकता है परंतु सतगुरु (कबीर साहेब) के संत का पार नहीं पा सकते। उस महात्मा सुदर्शन (स्वपच) के एक बाल

के समान तीन लोक भी नहीं हैं। मेरे साथ चलो, उस परमपिता परमात्मा के प्यारे हंस को लाने के लिए।

तब पाँचों पाण्डव व श्री कष्ण भगवान रथ में सवार होकर चले। सन्त के निवास से एक मील दूर रथ खड़ा करके नंगे पैरों स्वपच की झोंपड़ी पर पहुँचे। उस समय स्वयं कबीर साहेब (करुणामय साहेब जी स्वपच के गुरुदेव थे क्योंकि साहिब कबीर द्वापर युग में करुणामय नाम से अपने सतलोक से आए थे तथा सुदर्शन को अपना सतलोक का सत्य ज्ञान समझाया था) सुदर्शन स्वपच का रूप बना कर झोपड़ी में बैठ गए व सुदर्शन को अपनी गुप्त प्रेरणा से मन में संकल्प उठा कर कहीं दूर के संत या भक्त से मिलने भेज दिया जिसमें आने व जाने में कई रोज लगने थे। तब सुदर्शन के रूप में सतगुरु की चमक व शक्ति देख कर सर्व पाण्डव बहुत प्रभावित हुए। स्वयं श्री कष्णजी ने लम्बी दण्डवत् प्रणाम की। तब देखा देखी सर्व पाण्डवों ने भी ऐसा ही किया। कष्ण जी की ओर दष्टि डाल कर सुपच सुदर्शन जी ने आदर पूर्वक कहा कि - हे त्रिभुवननाथ! आज इस दीन के द्वार पर कैसे? मेरा अहोभाग्य है कि आज दीनानाथ विश्वम्भर मुझ तुच्छ को दर्शन देने स्वयं चल कर आए हैं। सबको आदर पूर्वक बैठना दिया तथा आने का कारण पूछा। श्री कष्ण जी ने कहा कि हे जानी-जान! आप सर्व गति (स्थिति) से परीचित हैं। पाण्डवों ने यज्ञ की है। वह आपके बिना सम्पूर्ण नहीं हो रही है। कप्या इन्हें कतार्थ करें। उसी समय वहां उपस्थित भीम की ओर संकेत करते हुए महात्मा जी सुदर्शन रूप में विराजमान परमेश्वर कबीर जी ने कहा कि यह वीर मेरे पास आया था तथा मैंने अपनी विवशता से इसे अवगत करवाया था। श्री कष्ण जी ने कहा कि - हे पूर्णब्रह्म! आपने स्वयं अपनी वाणी में कहा है कि -

''संत मिलन को चालिए, तज माया अभिमान। ज्यों ज्यों पग आगे धरै, सो–सो यज्ञ समान।।''

आज पांचों पाण्डव राजा हैं तथा मैं स्वयं द्वारिकाधीश आपके दरबार में राजा होते हुए भी नंगे पैरों उपस्थित हूँ। अभिमान का नामों निशान भी नहीं है तथा स्वयं भीम ने भी खड़ा हो कर उस दिन कहे हुए अपशब्दों की चरणों में पड़ कर क्षमा याचना की। इसलिए हे नाथ! आज यहाँ आपके दर्शनार्थ आए आपके छः सेवकों के कदमों के यज्ञ समान फल को स्वीकार करते हुए सौ आप रखो तथा शेष हम भिक्षुकों को दान दो ताकि हमारा भी कल्याण हो। इतना आधीन भाव सर्व उपस्थित जनों में देख कर जगतगुरु (करुणामय)सुदर्शन रूप में अति प्रसन्न हुए।

कबीर, साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं। जो कोई धन का भूखा, वो तो साधू नाहिं।।

उठ कर उनके साथ चल पड़े। जब सुदर्शन जी यज्ञशाला में पहुँचे तो चारों ओर एक से एक ऊँचे सुसज्जित आसनों पर विराजमान महा मण्डलेश्वर सुदर्शन जी के रूप (दोहरी धोती घुटनों से थोड़ी नीचे तक, छोटी-2 दाड़ी, सिर के बिखरे केश न बड़े न छोटे, टूटी-फूटी जूती। मैले से कपड़े, तेजोमय शरीर) को देखकर अपने मन में सोच सोचने लगे ऐसे अपवित्र व्यक्ति से शंख सात जन्म भी नहीं बज सकता है। यह तो हमारे सामने ऐसे है जैसे सूर्य के सामने दीपक। श्रीकष्ण जी ने स्वयं उस महात्मा का आसन अपने हाथों लगाया (बिछाया) क्योंकि श्री कष्ण श्रेष्ठ आत्मा हैं, (परमात्मा हैं) उन्होंने सुदामा व भिलनी को भी ह्रदय से चाहा। यहाँ तो स्वयं परमेश्वर पूर्णब्रह्म सतपुरुष, (अकाल मूर्ति) आए हैं। द्रौपदी से कहा कि हे बहन! सुदर्शन महात्मा जी आए हैं, भोजन तैयार करो। बहुत पहुँचे हुए संत हैं। द्रौपदी देख रही है कि संत लक्षण तो एक भी नहीं दिखाई देते हैं। यह तो एक गहस्थी गरीब (कंगाल) व्यक्ति नजर आता है। न तो वस्त्र भगवां, न गले में माला, न तिलक, न सिर पर बड़ी जटा, न मुण्ड ही मुण्डवा रखा और न ही कोई चिमटा, झोली, करमण्डल लिए हुए था। फिर भी श्री कष्ण जी के कहते ही स्वादिष्ट भोजन कई प्रकार का बनाकर एक सुन्दर

थाल (चांदी का) में परोस कर सुदर्शन जी के सामने रख कर मन में सोचने लगी कि आज यह भक्त भोजन खा कर ऊँगली चाटता रह जाएगा। जिन्दगी में ऐसा भोजन कभी नहीं खाया होगा। सुदर्शन जी ने नाना प्रकार के भोजन को इक्ट्ठा किया तथा खिचड़ी सी बनाई। उस समय द्रौपदी ने देखा कि इसने तो सारा भोजन (खीर, खांड, हलुवा, सब्जी, दही, बड़े आदि) घोल कर एक कर लिया। तब मन में दुर्भावना पूर्वक विचार किया कि इस मूर्ख हब्शी ने तो खाना खाने का भी ज्ञान नहीं। यह काहे का संत? कैसा शंख बजाएगा। {क्योंकि खाना बनाने वाली स्त्री की यह भावना होती है कि मैं ऐसा स्वादिष्ट भोजन बनाऊँ कि खाने वाला मेरे भोजन की प्रशंसा कई जगह करे)। प्रत्येक बहन की यही आशा होती है।

वह बेचारी एक घंटे तक धुएँ से आँखें खराब करती है और मेरे जैसा कह दे कि नमक तो है ही नहीं, तब उसका मन बहुत दुःखी होता है। इसलिए संत जैसा मिल जाए उसे खा कर सराहना ही करते हैं। यदि कोई न खा सके तो नमक कह कर 'संत' नहीं मांगता। संतों ने नमक का नाम राम–रस रखा हुआ है। कोई ज्यादा नमक खाने का अभ्यस्त हो तो कहेगा कि भईया– रामरस लाना। घर वालों को पता ही न चले कि क्या मांग रहा है? क्योंकि सतसंग में सेवा में अन्य सेवक ही होते हैं। न ही भोजन बनाने वालों को दुःख हो। एक समय एक नया भक्त किसी सतसंग में पहली बार गया। उसमें किसी ने कहा कि भक्त जी रामरस लाना। दूसरे ने भी कहा कि रामरस लाना तथा थोड़ा रामरस अपनी हथेली पर रखवा लिया। उस नए भक्त ने खाना खा लिया था। परंतु पंक्ति में बैठा अन्य भक्तों के भोजन पाने का इंतजार कर रहा था कि इकट्ठे ही उठेंगे। यह भी एक औपचारिकता सतसंग में होती है। उसने सोचा रामरस कोई खास मीठा खाद्य पदार्थ होगा। यह सोच कर कहा मुझे भी रामरस देना। तब सेवक ने थोड़ा सा रामरस (नमक) उसके हाथ पर रख दिया। तब वह नया भक्त बोला – ये के कान कै लाना है, चौखा सा (ज्यादा) रखदे। तब उस सेवक ने दो तीन चमच्च रख दिया। उस नए भक्त ने उस बारीक नमक को कोई खास मीठा खाद्य प्रसाद समझ कर फांका मारा। तब चुपचाप उठा तथा बाहर जा कर कुल्ला किया। फिर किसी भक्त से पूछा रामरस किसे कहते हैं? तब उस भक्त ने बताया कि नमक को रामरस कहते हैं। तब वह नया भक्त कहने लगा कि मैं भी सोच रहा था कि कहें तो रामरस परंतु है बहुत खारा। फिर विचार आया कि हो सकता है नए भक्तों पर परमात्मा प्रसन्न नहीं हुए हों। इसलिए खारा लगता हो। मैं एक बार फिर कोशिश करता, अच्छा हुआ जो मैंने आपसे स्पष्ट कर लिया। फिर उसे बताया गया कि नमक को रामरस किस लिए कहते हैं?}

स्वपच सुदर्शन जी ने उस सारे भोजन को पाँच ग्रास बना कर खा लिया। पाँच बार शंख ने आवाज की। उसके बाद शंख ने आवाज नहीं की।

गरीबदास जी महाराज की वाणी
(सतग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 862)

राग बिलावल से

व्यंजन छतीसों परोसिया जहाँ द्रौपदी रानी।
बिन आदर सतकार के, कही शंख ना बानी।।
पंच गिरासी बालमीक, पंचै बर बोले।
आगे शंख पंचायन, कपाट न खोले।।
बोले कष्ण महाबली, त्रिभुवन के साजा।

बाल्मिक प्रसाद से, शंख अखण्ड क्यों न बाजा।।
द्रोपदी सेती कष्ण देव, जब ऐसे भाखा।
बाल्मिक के चरणों की, तेरे ना अभिलाषा।।
प्रेम पंचायन भूख है, अन्न जग का खाजा।
ऊँच नीच द्रोपदी कहा, शंख अखण्ड यूँ नहीं बाजा।।
बाल्मिक के चरणों की, लई द्रोपदी धारा।
अखण्ड शंख पंचायन बाजीया, कण–कण झनकारा।।

उस समय श्री कष्ण ने सोचा कि इन महात्मा सुदर्शन के भोजन खा लेने से भी शंख अखण्ड क्यों नहीं बजा? अपनी दिव्य दष्टि से देखा? तब द्रौपदी से कहा - द्रौपदी, भोजन सब प्राणी अपने-2 घर पर रूखा-सूखा खा कर ही सोते हैं। आपने बढ़िया भोजन बना कर अपने मन में अभिमान पैदा कर लिया। बिना आदर-सत्कार के किया हुआ धार्मिक अनुष्ठान (यज्ञ, हवन, पाठ) सफल नहीं होता। फिर आपने इस साधारण से व्यक्ति को क्या समझ रखा है? यह पूर्णब्रह्म हैं। इसके एक बाल के समान तीनों लोक भी नहीं हैं। आपने अपने मन में इस महापुरुष के बारे में गलत विचार किए हैं उनसे आपका अन्तःकरण मैला (मलीन) हो गया है। इनके भोजन ग्रहण कर लेने से तो यह शंख स्वर्ग तक आवाज करता और सारा ब्रह्मण्ड गूंज उठता। अब यह पांच बार बोला है। इसलिए कि आपका भ्रम दूर हो जाए क्योंकि और किसी ऋषि के भोजन पाने से तो यह टस से मस नहीं हुआ। अब आप अपना मन साफ करके इन्हें पूर्ण परमात्मा समझकर इनके चरणों को धो कर पीओ, ताकी तेरे हृदय का मैल (पाप) साफ हो जाए।

उसी समय द्रौपदी ने अपनी गलती को स्वीकार करते हुए संत से क्षमा याचना की और सुपच सुदर्शन गहस्थी भक्त के चरण अपने हाथों धो कर चरणामत बनाया। रज भरे (धूलि युक्त) जल को पीने लगी। जब आधा पी लिया तब भगवान कष्ण ने कहा द्रौपदी कुछ अमत मुझे भी दे दो ताकि मेरा भी कल्याण हो। यह कह कर कष्ण जी ने द्रौपदी से आधा बचा हुआ चरणामत पीया। उसी समय वही पंचायन शंख इतने जोरदार आवाज से बजा कि स्वर्ग तक ध्वनि सुनि। बहुत समय तक अखण्ड बजता रहा तब वह पाण्डवों की यज्ञ सफल हुई।

❖ *विशेष :- पाठकों को भ्रम उत्पन्न होगा कि ऋषि तो मान-बड़ाई ईर्ष्यावश थे, परंतु उस यज्ञ में श्री कष्ण जी तो स्वयं श्री विष्णु जी थे जो सतोगुण प्रधान हैं। उनके भोजन से भी शंख किस कारण से नहीं बजा? इसका उत्तर यह है :- प्रथम तो श्री विष्णु जी के पास सत्यनाम व सारनाम वाली साधना नहीं थी जो पाप नाश करती है। दूसरे ये ऊपर से तो सतोगुणी हैं, परंतु अंदर राग-द्वेष से भरे हैं। प्रमाण :- श्री शिव महापुराण के विद्यवेश्वर संहित खण्ड में प्रमाण है कि एक समय श्री ब्रह्मा जी श्री विष्णु जी के पास गए। उस समय श्री विष्णु जी शेष शैय्या पर विराजमान थे। श्री लक्ष्मी जी उनकी सेवा कर रही थी। अन्य पारखद (देवगण जो सेवादार हैं) आसपास खड़े थे। ब्रह्मा जी को आता देखकर अपनी मानहानि विचारकर श्री विष्णु जी ने श्री ब्रह्मा जी की आवभगत यानि सम्मान नहीं किया। बैठे-बैठे कहा, आओ! कैसे आना हुआ? श्री ब्रह्मा जी ने अपनी मानहानि समझी और श्री विष्णु जी से कहा कि हे पुत्र विष्णु! देख तेरा बाप आया हूँ। सारे संसार का उत्पत्तिकर्ता मैं ही हूँ। इसलिए तू मेरा पुत्र है। तेरे को अभिमान हो गया है। अपने बाप का भी सम्मान नहीं करता। तेरे को ठीक करता हूँ। श्री विष्णु जी ऊपर से तो सतोगुणी दिखावा कर रहे थे, परंतु अंदर से जल-भुन गए थे। बोले, हे पुत्र ब्रह्मा! तू मेरी नाभि से उत्पन्न हुआ है। इसलिए मेरा पुत्र है। तू अपने बाप का*

सम्मान नहीं करता। तेरा दिमाग ठीक करना पड़ेगा। यह कहकर मरने-मारने के लिए तैयार हो गए। फिर इनके पिता काल ब्रह्म ने इनके मध्य में तेजोमय स्तंभ खड़ा करके युद्ध रूकवाया।

पाठकों का भ्रम निवारण हो गया होगा कि इस कारण से श्री कृष्ण जी से भी पाण्डव यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हुई। रही बात देवताओं की, वे भी तेतीस (33) करोड़ की सँख्या में देवराज इन्द्र सहित यज्ञ में उपस्थित थे। एक समय देवराज इन्द्र की पालकी को चार ऋषि उठाकर चल रहे थे। इन्द्र ने अपनी रानी से विलास (Sex) करने की प्रबल इच्छा हुई थी। वह कार्यालय से अपने महल को जा रहा था। उसको शीघ्र जाने की इच्छा थी। वासनावश अंधा हो रहा था। पालकी को ले जाने वाले एक ऋषि के पैर में लंग (कुछ लंगड़ापन) था। जिस कारण से पालकी धीरे चल रही थी। उस कामांध (स्त्री भोग के लिए विवेक नष्ट) इन्द्र ने उस ऋषि को लात दे मारी कि तू धीरे-धीरे क्यों चल रहा है? शीघ्र नहीं चला जाता। ऋषि को दुःख हुआ और पालकी छोड़ दी। इन्द्र को शॉप दे दिया कि पत्नी मिलन से पहले ही तेरी मृत्यु हो जाएगी। वही हुआ। अन्य देवताओं की कथा लिखने लगूँ तो एक पुस्तक अलग से तैयार हो जाएगी। समझदार को संकेत ही पर्याप्त होता है।

प्रमाण के लिए बन्दी छोड़ गरीबदास जी महाराज कृत

।। अचला का अंग।।

(सत ग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 359)

गरीब, सुपच रूप धरि आईया, सतगुरु पुरुष कबीर।
तीन लोक की मेदनी, सुर नर मुनिजन भीर।।97।।
गरीब, सुपच रूप धरि आईया, सब देवन का देव।
कृष्णचन्द्र पग धोईया, करी तास की सेव।।98।।
गरीब, पांचौं पंडौं संग हैं, छठ्ठे कृष्ण मुरारि।
चलिये हमरी यज्ञ में, समर्थ सिरजनहार।।99।।
गरीब, सहंस अठासी ऋषि जहां, देवा तेतीस कोटि।
शंख न बाज्या तास तैं, रहे चरण में लोटि।।100।।
गरीब, पंडित द्वादश कोटि हैं, और चौरासी सिद्ध।
शंख न बाज्या तास तैं, पिये मान का मध।।101।।
गरीब, पंडौं यज्ञ अश्वमेघ में, सतगुरु किया पियान।
पांचौं पंडौं संग चलैं, और छठा भगवान।।102।।
गरीब, सुपच रूप को देखि करि, द्रौपदी मानी शंक।
जानि गये जगदीश गुरु, बाजत नाहीं शंख।।103।।
गरीब, छप्पन भोग संजोग करि, कीनें पांच गिरास।
द्रौपदी के दिल दुई हैं, नाहीं दृढ़ विश्वास।।104।।
गरीब, पांचौं पंडौं यज्ञ करी, कल्पवृक्ष की छांहिं।
द्रौपदी दिल बंक हैं, शंख अखण्ड बाज्या नांहि।।105।।
गरीब, छप्पन भोग न भोगिया, कीन्हें पंच गिरास।
खड़ी द्रौपदी उनमुनी, हरदम घालत श्वास।।107।।
गरीब, बोलै कृष्ण महाबली, क्यूं बाज्या नहीं शंख।
जानराय जगदीश गुरु, काढत है मन बंक।।108।।

गरीब, द्रौपदी दिल कूं साफ करि, चरण कमल ल्यौ लाय।
बालमीक के बाल सम, त्रिलोकी नहीं पाय।।109।।
गरीब, चरण कमल कूं धोय करि, ले द्रौपदी प्रसाद।
अंतर सीना साफ होय, जरैं सकल अपराध।।110।।
गरीब, बाज्या शंख सुभान गति, कण कण भई अवाज।
स्वर्ग लोक बानी सुनी, त्रिलोकी में गाज।।111।।
गरीब, पंडौं यज्ञ अश्वमेघ में, आये नजर निहाल।
जम राजा की बंधि में, खल हल पर्या कमाल।।113।।

सत ग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 328
।।पारख का अंग।।

गरीब, सुपच शंक सब करत हैं, नीच जाति बिश चूक।
पौहमी बिगसी स्वर्ग सब, खिले जो पर्वत रूंख।
गरीब, करि द्रौपदी दिलमंजना, सुपच चरण जी धोय।
बाजे शंख सर्व कला, रहे अवाजं गोय।।
गरीब, द्रौपदी चरणामंत लिये, सुपच शंक नहीं कीन।
बाज्या शंख असंख धुनि, गण गंधर्व ल्यौलीन।।
गरीब, फिर पंडौं की यज्ञ में, संख पचायन टेर।
द्वादश कोटि पंडित जहां, पडी सभन की मेर।।
गरीब, करी कष्ण भगवान कूं, चरणामंत स्यौं प्रीत।
शंख पंचायन जब बज्या, लिया द्रोपदी सीत।।
गरीब, द्वादश कोटि पंडित जहां, और ब्रह्मा विष्णु महेश।
चरण लिये जगदीश कूं, जिस कूं रटता शेष।।
गरीब, बालमीक के बाल समि, नाहीं तीनौं लोक।
सुर नर मुनि जन कष्ण सुधि, पंडौं पाई पोष।।
गरीब, बाल्मीक बैंकुठ परि, स्वर्ग लगाई लात।
संख पचायन घुरत हैं, गण गंधंव ऋषि मात।।
गरीब, स्वर्ग लोक के देवता, किन्हैं न पूर्या नाद।
सुपच सिंहासन बैठतैं, बाज्या अगम अगाध।।
गरीब, पंडित द्वादश कोटि थे, सहिदे से सुर बीन।
संहस अठासी देव में, कोई न पद में लीन।
गरीब, बाज्या संख स्वर्ग सुन्या, चौदह भवन उचार।
तेतीसौं तत्त न लह्या, किन्हैं न पाया पार।।

।। सतनाम व सारनाम बिना सर्व साधना व्यर्थ।।

यज्ञ संवाद में स्वयं कष्ण भगवान कहते हैं कि युधिष्ठिर ये सर्व भेष धारी व सर्व ऋषि, सिद्ध, देवता, ब्राह्मण आदि सब पाखण्डी लोग हैं। ये सबके सब मान-बड़ाई के भूखे क्रोधी तथा लालची हैं। सर्प से भी खूंखार हैं। जरा-सी बात पर लड़ मरते हैं। शॉप दे देते हैं। हत्या-हिंसा करते समय आगा-पीछा नहीं देखते। इनके अन्दर भाव भक्ति नहीं है। सिर्फ दिखावा करके दुनियां के भोले-भाले

भक्तों को अपनी महिमा जनाए बैठे हैं। कृप्या पाठक विचार करें कि वह समय द्वापर युग का था उस समय के संत बहुत ही अच्छे साधु थे क्योंकि आज से लगभग साढे पाँच हजार वर्ष पूर्व आम व्यक्ति के विचार भी नेक होते थे। आज से 30,40 वर्ष पहले आम व्यक्ति के विचार आज की तुलना में बहुत अच्छे होते थे। इसकी तुलना को साढे पांच हजार वर्ष पूर्व का विचार करें तो आज के संतों-साधुओं से उस समय के सन्यासी साधु बहुत ही उच्च थे। फिर भी स्वयं भगवान ने कहा ये सब पशु हैं, शास्त्रविधि अनुसार उपासना करने वाले उपासक नहीं हैं। यही कड़वी सच्चाई गरीबदास जी महाराज ने षटदर्शन घमोड़ बहदा तथा बहदे के अंग में, तक्र वेदी में, सुख सागर बोध में तथा आदि पुराण के अंग में कही है कि जो साधना यह साधक कर रहे हैं वह सत्यनाम व सारनाम बिना बहदा (अनावश्यक) है।

।। षटदर्शन घमोड़ बहदा।।

(सत ग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 534)

षट दर्शन षट भेष कहावैं, बहुविधि धूंधू धार मचावैं।
तीरथ ब्रत करैं तरबीता, वेद पुराण पढ़त हैं गीता।।
चार संप्रदा बावन द्वारे, जिन्हौं नहीं निज नाम बिचारे।
माला घालि हूये हैं मुकता, षट दल ऊवा बाई बकता।।
बैरागी बैराग न जानैं, बिन सतगुरु नहीं चोट निशानैं।
बारह बाट बिटंब बिलौरी, षट दर्शन में भक्ति ठगौरी।।
सन्यासी दश नाम कहावैं, शिव शिव करैं न शंशय जावैं।
निर्बानी निहकछ निसारा, भूलि गये हैं ब्रह्म द्वारा।।
सुनि सन्यासी कुल कर्म नाशी, भगवैं प्यौंदी भूले द्यौंहदी।
छल छिद्र की भक्ति न कीजै, आगै जुवाब कहों क्या दीजै।।
भ्रम कर्म भैंरौं कूं पूजैं, सत्य शब्द साहिब नहीं सूझैं।
माला मुकटी ककड हुकटी, बांना गौड़ी भांग भसौड़ी।।
जती जलाली पद बिन खाली, नाम न रता घोरी घता।
मढी बसंता ओढै कंथा, वनफल खावैं नगर न जावैं।।
हाथौं करुवा काँधै फरुवा, खौलि बनावैं सिद्ध कहावैं।
भूले जोगी रिद्धि के रोगी, कान चिरावैं भस्म रमावैं।।
तपा अकाशी बारह मासी, मौंनी पीठी पंच अंगीठी।
कन्द कपाली अंदर खाली, बाहर सिद्धा ये हैं गद्धा।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – – ।।

।। अथ बहदे का ग्रन्थ।।
(सतग्रन्थ साहिब पष्ठ नं. 536)

खाखी और निर्बानी नागा, सिद्ध जमात चलावैं है। रणसींगे तुरही तुतकारा, गागड भांग घुटावैं हैं।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – – ।।
काशी गया प्रयाग महोदधि, जगन्नाथ कूं जावैं हैं।
लौहा गर और पुष्कर परसे, द्वारा दाग दगावैं हैं।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – – ।।
तीर तुपक तरवार कटारी, जम धड जोर बंधावैं हैं।

हरि पैड़ी हरि हेत न जान्या, वहां जाय तेग चलावैं हैं।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – – ।।
काटैं शीश नहीं दिल करुणा, जग में साध कहावैं हैं।
जो नर जाके दर्शन जाहीं, तिस कूं भी नरक पठावैं हैं।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – – ।।

।।कुंभ के मेले में प्रथम स्नान करने पर कत्ले आम।।

एक समय हरिद्वार में कुंभ का मेला लगा। उसमें नागा महात्माओं (तमगुण श्री शिव जी के उपासकों)तथा वैष्णों (सतगुण श्री विष्णु जी के उपासकों) संतों का प्रथम स्नान करने के लिए झगड़ा हुआ। जिसमें 25 हजार नकली संत तलवारों व छुरों से आपस में लड़ कर मर गए। अनजान व्यक्ति इन्हें महात्मा समझता है परंतु सतनाम तथा सारनाम बिना जीव विकार ग्रस्त ही रहता है। चाहे कितना ही सिद्धि युक्त क्यों न हो जाए। जैसे दुर्वासा जी ने बच्चों के मजाक करने मात्र से शाप दिया जिससे भगवान कृष्ण व यादव कुल नष्ट हो गया।

ऋषि वशिष्ठ जी, ऋषि विश्वामित्र जी को राज ऋषि कह कर पुकारते थे। जिस से विश्वामित्र जी अपमान समझते थे तथा वशिष्ठ जी से कहते थे कि आप मुझे ब्रह्म ऋषि कहो परन्तु वशिष्ठ उन्हें राज ऋषि ही कह कर सम्बोधित करते थे। इस इर्ष्या वश विश्वामित्र जी ने वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों की हत्या कर दी। एक बार रात्रि के समय श्री विश्वामित्र जी ऋषि वशिष्ठ की हत्या करने के उद्देश्य से उसी वृक्ष पर छुप कर बैठ गया। जिस वृक्ष के नीचे वशिष्ठ जी सन्धया आरती करते थे। संध्या आरती के पश्चात् उपस्थित शिष्यों ने वशिष्ठ जी से कहा हे गुरूदेव! विश्वामित्र बड़ा दुष्ट है जिसने हमारे सौ गुरू भाईयों की हत्या कर दी। तब वशिष्ठ जी ने कहा बच्चों! विश्वामित्र जैसा महान ऋषि एक भी नहीं है यदि उनमें अभिमान तथा क्रोध न हो। अपने शत्रु के द्वारा अपनी प्रसंशा सुनकर ऋषि विश्वामित्र आत्मविभोर हो गए तथा ऊपर से टहनी पकड़ कर रोते हुए वृक्ष से नीचे उतरे तथा वाशिष्ठ जी के चरण पकड़ कर अपने कुकृत्य की क्षमा याचना की। तब ऋषि वाशिष्ठ जी ने ऋषि विश्वामित्र जी से कहा आओं ब्रह्म ऋषि। आज आप में अभिमान व क्रोध का नामोनिशान नहीं है। आज आप ब्रह्म ऋषि बने हो तो आगे से मैं ब्रह्म ऋषि कह के पुकारूंगा।

विचार करें:-- ऋषि विश्वामित्र जी ने बारह वर्ष घोर तप करके चमत्कारिक शाक्ति प्राप्त की। जिससे अपने भक्त त्रिशंकु के लिए अलग से स्वर्ग रचना करने को तैयार हो गए थे। स्वर्ग के राजा इन्द्र की प्रार्थना पर तथा त्रिशंकु को इन्द्र द्वारा स्वर्ग में स्थान देने की स्वीकृति के उपरान्त उद्देश्य बदला था। फिर भी अभिमान व इर्ष्यावश वशिष्ठ के मासूम बच्चों की हत्या कर डाली। ऋषि वशिष्ठ जी के कारनामे आप जी ने पहले पढ़ लिए हैं। इसीलिए कहा है कि ये सर्व साधक सत्य साधना रहित हैं। मुक्त नहीं हो सकते।S

संपट शिला कूं साहिब कहते, चेतनसार चलावैं हैं।
अंधा जगत पूजारी जाका, दूनिया कै मन भावैं हैं।।
पारख लीजै शब्द पतीजै, शालिग शिला पूजावैं हैं।
तुलसी तोरि मरोरैं मूरख, जड़ पर फूल चढावैं हैं।।
ककड़ भांग तमाखू पीवैं, बकरे काटि तलावै हैं।

सन्यासी शंकर कूं भूले, बंब महादे ध्यावैं हैं।।
ये दश नाम दया नहीं जानै, गेरु कपड रंगावैं हैं।
पार ब्रह्म सैं परचे नांहि, शिव करता ठहरावैं हैं।।
धूमर पान आकाश मुनी मुख, सुच्चित आसन लावैं हैं।
या तपसेती राजा होई, द्वंद धार बह जावैं हैं।।
आसन करै कपाली ताली, ऊपर चरण हलावैं हैं।
अजपा सेती मरहम नांहीं, सब दम खाली जावैं हैं।।
चार संप्रदा बावन द्वारे, वैरागी अब जावैं हैं।
कूड़े भेष काल का बाना, संतौं देखि रिसावैं हैं।।
त्रिकाली अस्नान करैं, फिर द्वादस तिलक बनावैं हैं।
जल के मच्छा मुक्ति न होई, निश दिन प्रबी न्हावैं हैं।।
सालोक, सामिप्य, सायुज्य,सारूप कहलावैं हैं।
चार मुक्ति में महरम नांही, आगे की क्या पावैं हैं।।
विश्वामित्र सुनि विस्तारा, सौ पुत्र बशिष्ट के मारा।
राज ऋषि सैं बहुत रिसाये, ब्रह्म ऋषि सै रीझ रिझाये।।
ज्ञान बिचित्र जोग अपारा, सर्व लक्षण सब से शिरदारा।
ऋग यजु साम अथर्वण भाषै। जामे नाम मूल नहीं राखैं।।
यौह बी बहदा है – – – – – – – ।।
काया माया पिण्ड रु प्राणा, जामैं बसै अलह रहिमाना।
दासगरीब मिहरसैं पाईये, देवल धाम न भटका खाईये।।

भावार्थ :- संत गरीबदास जी को यह तत्वज्ञान परमेश्वर कबीर जी से प्राप्त हुआ था। वाणियों में बताया है कि ये सर्व साधु-महात्मा श्री विष्णु सतगुण तथा श्री शिव जी तमगुण के उपासक हैं जिनकी भक्ति करने वालों को गीता अध्याय 7 श्लोक 12-15 तथा 20-23 में राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में, दूषित कर्म करने वाले मूर्ख बताया है। प्रथम तो इनकी साधना शास्त्रविधि के विपरित है। दूसरे ये नशा भी करते हैं। जिस कारण से ये अपना अनमोल मानव जीवन तो नष्ट करते ही हैं, जो इनके अनुयाई बनते हैं, उनको भी नरक का भागी बनाते हैं। उनका भी अनमोल मानव जीवन नष्ट करके पाप इकट्ठा करते हैं। जिस कारण से गीता में इसी अध्याय 17 में कहा है कि उनको नरक में डाला जाता है।

ये लोग चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) को पढ़ते तो हैं, परंतु वेदों में स्पष्ट किया है (यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15 में) कि ओम् (ॐ) नाम का जाप करो, अन्य पाखण्ड व कर्मकाण्ड मत करो। ये साधक ॐ नाम को मूल रूप में भक्ति का आधार नहीं रखते। अन्य मनमाने नाम व मनमानी अन्य साधना करते हैं। इसलिए इनकी मुक्ति नहीं होती।

संत गरीबदास जी ने स्पष्ट किया है कि हे साधक! सतगुरू की मेहर यानि कृपा से सत्य साधना प्राप्त कर। अन्य साधना देवल (देवालय यानि मंदिर) व धामों में ना भटक।

।।सत साहेब।।

❑❑❑